श्री सत्योपाख्यान

अनुवादक

डॉ० पं० श्री रामकुमारदासजी महाराज डी० लिट्

संस्थापक श्रीराम ग्रंथागार वरविश्राम बाग

मणि पर्वत श्री अयोध्या जी

प्रकाशक

पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज रामायणी

मणि पर्वत (नीचे) अयोध्याजी

श्री सत्योपाख्यान

अनुवादक
मानस तत्वान्वेषी
डा० पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज डि० लिट्
संस्थापक श्रीराम ग्रंथागार वरविश्राम बाग,
मणि पर्वत, श्री आयोध्याजी

प्रकाशक
पं० श्री रामकुमार दासजी रामायणी
मणि पर्वत के (नीचे) श्री अयोध्याजी

द्वितीय संस्करण सं० २०३८] [पुनर्मुद्रणार्थ सेवा ५ रुपया

मानसतत्त्वरसान्वेषी मानसाब्धिमन्थाचलः ।

रामकुमारदासोऽयं वेदान्तभूषणः शुचिः ।।

मानस तत्वान्वेषी

डॉ० पं० श्रीरामकुमारदास जी महाराज रामायणी

मणिपर्वत श्री अवध के, बासी पंडित धीर ।
श्रीमद्रामकुमार वर, शास्त्रार्थ रणवीर ।।
मानस तत्व अगाध के, अन्वषेक शुचि शांत ।
सन्त वेश विलसत मनो, मूर्ति मन्त वेदान्त ।।

श्री सत्योपाख्यान

ग्रन्थ के सम्बन्ध में---

ग्रन्थों में बार-बार सूत जी के लिये "सूतं पौराणिकं खलु" आता है और समस्त पुराण रचयिता भगवान वेद व्यास जी माने गये हैं "अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवती सुतः।" अतः जहाँ-जहाँ सूत शौनक का सम्वाद आता है उसे लोग व्यासकृत मान लेते हैं और जिन्हें अपनी नवीन रचना व्यासकृत मनवानी होती है वे अपना नाम देकर व्यासकृत कहकर सूत शौनक सम्वाद या शिवा-शिव सम्वाद से प्रगट करते हैं। अस्तु

सत्योपाख्यान ७९ अध्याय का एक पौराणिक ढंग का काव्य ग्रन्थ है, न तो इसके रचयिता का नाम कहीं दिया है और न रचनाकाल। रचनाकाल देने की तो प्राचीन परिपाटी ही नहीं थी। आज के वैज्ञानिक ढंग से खोज करने वालों ने इसे सोलहवीं शताब्दी की रचना स्वीकार किया है। सम्वत् १९५४ वि० में यह बम्बई में छपी थी। उसके बाद का पता नहीं। अनन्त श्री विभूषित पं० श्री रामबल्लभाशरण जी महाराज ने इसकी कथा लिखित प्रति से किया था। उस लिखित प्रति और छपी प्रति में कहीं-कहीं थोड़ा सा फर्क पड़ता है। छपी प्रति में प्रूफ की गलती भी है। मैंने उस लिखी प्रति से छपी का संशोधन कर लिया था। आरम्भ में श्री प० जी महाराज की कथा का भावार्थ भी नोट कर लिया था। मेरा अनुवाद उसी के अनुसार है इसलिये छपी प्रति से कहीं-कहीं एकाध श्लोक का मतभेद भी हो गया है। अनुवाद को संक्षिप्त करने की चेष्टा मैं अधिक किया करता हूँ पर इतना ख्याल अवश्य रखता हूँ कि कथानक की कोई छोटी सी बात भी न छूटने पाये और प्रवाह में शिथिलता न हो।

सत्योपाख्यान के पूर्वार्ध के ४९ अध्यायों में श्री राम जी चारों भाइयों की एक वर्ष से पचीस वर्ष तक अवस्था की बाल क्रीड़ायें वर्णित हैं, और उत्तरार्ध के तीस अध्यायों में श्री राम जी का विवाह चरित्र है।

कुछ रामद्वेषियों ने राम और दशरथ को राज्यलोलुप और मिथ्यावादी सिद्ध करने के लिये वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकांड सर्ग चार श्लोक छब्बीस और सर्ग एक सौ सात श्लोक तीन की रचना करके वा० रा० में मिला दिया। यदि राज्य शुल्क पर कैकेयी का विवाह हुआ होता तो केकेयी को कोपभवन का आश्रय न लेना पड़ता और उस बात को सभी जानते। सत्योपाख्यान लगभग सोलहवीं शताब्दी की रचना है और उससे छः सात सौ वर्ष पूर्व (भूषणा टीका के समय से वह प्रवाद फैल चुका था) जिसकी चर्चा सत्यो-पाख्यानकार ने मन्थरा के मुख से कराकर कैकेयी के द्वारा खंडन कराकर जयमाल की सच्ची बात कही है और वही दो सुप्रसिद्ध महाग्रन्थों का प्रमाण अनुवाद की पाद टिप्पणी में मैंने दे दिया है।

पं० रामकुमारदासः

अथ श्री सत्योपाख्यान

प्रथम अध्याय

दशरथसुत रामं योगिसेव्यांघ्रिपद्ममजमथ,
सनकाद्यैः पूज्यमानं सदैव ।
हृदि हृदि कृत वासं नारदाद्यैश्च गीतं,
तममहमखिल देवं सर्वकर्मानतोऽस्मि ॥१॥

सेवत हैं सब योगि सदा सनकादिक पूजिसुध्यान जगावैं ।
नारद आदि सुगाव अजन्म सबै जनके हिय पैठि रहावैं ॥
इष्ट सबै के तिन्हैं सब कर्म प्रणामकै आश 'कुमार' लगावैं ।
श्री दश स्यन्दन नन्दन राम के द्वौ पदपद्म हिये मम आवैं ।

नैमिषारण्य के पुराण प्रसिद्ध सहस्त्र वर्षीय सत्र (यज्ञ) में एक बार वहाँ उपस्थित शौनकादि सभी ऋषियों ने समस्त पुराणों के ज्ञाता एवं सभी शास्त्रों के यथार्थ पण्डित श्री सूत जी को प्रणाम करके पूंछा—"सम्पूर्णशास्त्रों के सुपण्डित एवं महाबुद्धिमान् हे श्री सूत जी ! अब आप कृपा करके परमरमणीक अथच पवित्रतम् श्री रामभद्र जी की कथा कहिए ॥२।३॥ सूत जी ने कहा कि ब्रह्मर्षियों श्री रामभद्र जी की शुभ कथा—जिसे कि पहले भगवान श्री व्यास जी ने कहा था—आप सबके समक्ष कहता हूँ सुनिये ॥४॥ भागवत् धर्म में तत्पर महातेजस्वी श्री बालमीकि जी समस्त पर्वतों में सुन्दर परम पवित्र चित्रकूट गिरि के अञ्चल में रहते थे । एक बार उन आदि कवि के दर्शन करने चिरजीवी महामुनि मार्कण्डेय आये । भृगुवंशी ऋषि मार्कण्डेय को आया देखकर महा तपस्वी बालमीकि जी ने उनका बहुत स्वागत सत्कार करके सुन्दर आसन पर बैठ कर कहा--'हे मुने ! आपने बड़ी कृपा करके मेरे आश्रम को पवित्र किया, अब शीघ्र ही अपने आने का कारण कहिये ।" तब महा बुद्धिमान् श्री

मार्कण्डेय जी ने प्रणाम करके निवेदन किया—' हे महाभाग प्रचेतानन्दन आप महाबुद्धिमान् हैं। कृपा करके परब्रह्म–परमात्मा श्री राम जी की मनोहर कथा सुनाकर मुझे कृतार्थ कीजिये।'' ५–१०॥

श्री वाल्मीकि ने कहा, हे सुव्रत महामुने ! आप तो समस्त श्री रामचरित्र जानते ही हैं तो भी आपकी प्रसन्नता के लिये कुछ कहता हूँ। श्री राम जी साक्षात् परमात्मा हैं, देवताओं की प्रार्थना पर पृथ्वी का भार उतारने के लिये स्वयं (किसी के कलांश नहीं) दशरथ के घर में अवतार लिया है, [इस समय तो श्री राम जी राजगद्दी पर विराजमान हैं, मैं उनके बालकाल की बात कहता हूँ।] जिस समय श्री राम जी भाइयों के सहित आँगन में रेंगते थे, यद्यपि वे दासियों–धाइयों से परिरक्षित थे और पीत रंग की झीनीझिंगूली (कुर्ता) पहने थे। कानों में मणि जड़ित कुण्डल, भुजाओं में अंगद (चौखूटा बिजायठ) हाथों में दिव्यकंकण, कटि में करधनी, पावों में नूपुर, कण्ठ में बघनहा, मणियों का कण्ठा एवं अनेक प्रकार से खरादी गई श्री तुलसी की मणियाँ धारण किये थे, इत्र फुलेल सुवासित काले घुंघराले केशों की लटूरी मुख-मण्डल पर लटककर मुख को बार-बार ढँक सी लेती थीं। तो भी सर्वाङ्ग को धूलि से धूसरित करके आँगन में लोट-लोट कर क्रीड़ा करते हुए परिजन-पुरजन को परमानन्द प्रदान कर रहे थे।।११–१६)

एक बार नानारत्नों से अलंकृत परमदिव्य राजमहल में बहुत बड़ी-बड़ी सोने के समान चमकते पीली जटावाले महायोगेश्वर श्री बशिष्ट मुनि पधारे। देखते ही हजारों दासियों ने तीनों महारानियों के पास जा-जाकर श्री मुनिराज का आगमन निवेदन करते हुए प्रार्थना की कि परम पूज्य एवं अज्ञान नाशक श्री गुरु जी के पास राजकुमारों को लेकर चलिये।।१७–२१।) सुनते ही अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री कौशिल्या जी धीरे-धीरे चलते नूपुर बजाते हुए उज्ज्वल नील मणि प्रभु श्री रामभद्र का हाथ पकड़कर आईं और सपुत्र गुरु चरणों पर शिर रखकर प्रणाम करके दिव्य सिंहासन पर गुरु जी को पधरा कर बालक रामभद्र के हाथ से चरणों में पूजा समर्पित की और तब महातेजस्वी मनः विजयी श्री बशिष्ट जी ने भी गोद में उठाकर श्री रामभद्र जू के मस्तक पर हाथ रखकर

'चिरंजीव' 'चिरंजीव' कहा ।।२३-२४।। उसी समय कैकेयी और सुमित्रा ने भी आकर स्व-स्व पुत्रों सहित गुरु चरणों पर शिर रखकर प्रणाम किया पूजा समर्पित कराई और मुनिराज ने भी उसी तरह आशीर्वाद देकर तीनों कुमारों को भी अपनी गोद में श्री रामभद्र जी के पास ही बैठा लिया। महल की सभी स्त्रियाँ मुनि जी के दर्शन से परमानन्दित हुईं। सभी रानियों की ओर कृपापूर्ण वात्सल्य दृष्टि से देखते हुये आशीर्वाद दिया कि हे श्री सम्पन्न देवियों! आप लोगों और राजा के पुण्य से रक्षित ये राजकुमार सब सानन्द क्रीड़ा करते रहें ।।२५-३२।। इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीय अध्याय

श्री कौशिल्या जी ने निवेदन किया कि हे गुरुदेव! जैसे सूर्यनारायण के उदय रहते अन्धकार का भय नहीं रहता उसी तरह आपकी रक्षा में रहने से सदैव कुशल ही है। परन्तु मेरे मन में एक सन्देह है। कभी-कभी स्वप्न में अपने रामलला को महान् प्रकाश युक्त देखती हूँ और कभी शंख, चक्र गदा, तलवार, धनुष, भल्ल आदि अनेकानेक आयुध धारण किये गरुड़ पर विराजमान देखती हूँ ।।१-३) श्री सुमित्रा जी ने कहा कि प्रभो! कभी-कभी मैं भी स्वप्न में लक्ष्मण को ऐसा देखती हूँ कि चाँदी के समान श्वेत रंगवाले हजार शिर वाले नाग के ऊपर विराजमान हैं और क्षण भर में हजारों शिर हजारों हाथ हजारों नेत्र हजारों पाँव हो जाते हैं। इसी तरह कभी शत्रुघ्न को उसी तरह रजत श्वेत नाग पर सोया एवं करोड़ों सूर्य के समान प्रभामान् तथा सुन्दर-दर्शनीय नाभि में कमल एवं आठ भुजा वाला देखती हूँ। श्री कैकेयी जी ने कहा कि मैं भी स्वप्न में भरत को शंख के समान उज्ज्वल, स्निग्धवर्ण तथा चार भुजा वाला कभी गरुड़ पर बैठा कभी मृणा स्त्रधवल नाग पर सोया देखती हूँ। अन्य रानियों ने भी कहा कि हमें भी कभी-कभी स्वप्न में रामलाल साक्षात परब्रह्मरूप में सभी देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते दिखाई पड़ते हैं ।।४-१०।। रानियों का कथन सुनकर महामुनि ने नेत्र मूँदकर एकाग्रमन से ध्यान किया तो ज्ञात हुआ कि ये चारों नृपनन्दन तो साक्षात् परमात्मा ही हैं, रावणादि करोड़ों राक्षसों को मारेंगे, परन्तु इस तत्व को ये महाभाग्य रानियाँ नहीं

जानती हैं, मुझे भी गुप्त रखना ही उचित है। यदि ये इनके पर तत्व को जान लेंगी तो फिर पुत्र भाव का आनन्द न रह जायगा ॥ १–१७॥ ऐसा विचार कर हंसते हुये कहा—"ये चारों राजकुमार गुण में नारायण के समान हैं। इसीसे स्वप्न में विष्णु एवं पार्षदों के रूप दिखाई पड़ते हैं" ॥१८, १९॥ रानियों ने पुनः प्रार्थना की कि हे गुरुदेव ये बालक आँगन में खेलते रहते हैं। इन्हें बैताल, भूत, प्रेत, डाकिनी मारिका, राक्षस आदि कोई बाधा न दे सकें, किसी की नजर न लग जाय इसलिए हे स्वामिन् सर्वोपद्रव घातिनी रक्षा कर दीजिए, [मंत्र यंत्र से झाड़ फूँक दीजिए।] आप तो सब दिन से इक्ष्वाकु वंश की रक्षा करते आये हैं। हम सब तो एकमात्र आपही की शरण हैं ॥२०–२५॥ प्रसन्नतापूर्वक मुसकाते हुए गुरु जी ने कहा कि—देवियों आप ठीक कह रही हैं। बालकों की रक्षा पढ़ने मैं नित्य आया करूँगा। यह कहकर रानियों से विदा लेकर महामुनि अपने आश्रम पर जाते हुए पूर्व वृतान्त विचारने लगे इन्हीं के लिये तो मैंने निकृष्ट कर्म पुरोहिती स्वीकार किया है। श्री राम जी की पुण्य मूर्ति ये मातायें धन्य हैं, राजा दशरथ धन्य हैं, अयोध्यापुरी धन्य है और इन सबके गुरु होने से मैं भी धन्य एवं नमस्कारार्ह हूँ। ऐसा विचारते एवं मार्ग में लोगों से पूजित होतें हुये कुण्ड पर स्थित अपने दिव्याश्रम में पहुँच कर शिष्यों एवं सज्जनों से सेवित हुए, और रक्षा पढ़ने के बहाने नित्य ही राज महल जाकर श्री रामादि का दर्शन करने लगे। ॥२६–३२॥ इतनी कथा सुनकर मार्कण्डेय मुनि ने श्री बाल्मीकि जी के चरणों में प्रणाम करके कहा कि हे मुनि पुंगव आपकी कृपा से श्री राम तत्व सुनकर मैं सन्देह रहित हो गया, ऐसा गद्-गद् स्वर से कह कर और पुनः-पुनः आदि कवि की परिक्रमा करके प्रसन्नता पूर्वक श्री अयोध्यानगरी में पहुँच कर महाराजाधिराज श्री रामचन्द्र जी का दर्शन कर प्रणाम करके अपने आश्रम पर गये ॥३३–३५॥ मार्कण्डेय जी का आश्रम पुष्यभद्रा नदी के तट पर नाना मुनिगणों से युक्त था जहाँ सभी प्राणी स्वाभाविक बैर भुला कर रहते थे। उसी आश्रम पर कामदेव अपनी युवतियों की महती सैन्य के साथ मुनि मार्कंण्डेय से हार चुका था। श्री जी के कमल-कलित कोमल करों से ललित श्री राम जी के युगल पादपद्मों का ध्यान स्मरण करते हुए चिरजीवी मुनि निवास करने लगे ॥३६–३९॥ इति

तृतीय अध्याय

श्री शौनक महर्षि ने कहा कि हे बुद्धिमन् ! सूत जी श्री राम जी के और भी परम अद्‌भुत चरित्र कहिये । क्योंकि श्री रामचरित्र का एक-एक अक्षर तक मनुष्यों के पाप-पर्वत को विदीर्ण कर चूर-चूर कर देने वाला भयंकर बज्र है। जो प्राणी मानव शरीर पाकर भी श्री राम जी का भजन स्मरण नहीं करता, उस पापी को उसके कर्मों ने ठग लिया ऐसा जानिये । श्री सूत जी ने कहा कि हे महर्षे आप तो श्री राम जी के युगल चरण कमलों के मकरंद का सतत् आस्वादन करने वाले, भ्रमर हैं। मैं श्री राम जी का पावन चरित्र कहता हूँ सुनिये ।।३।। नराकार परब्रह्म-परमात्मा श्री रामभद्र जी एक बार माता की गोद में खेल रहे थे उसी समय श्री कौशिल्या जी की समस्त दासियों की यूथेश्वरी श्री राम जी की मुख्य धात्री परम सुन्दरी धन्यावती आई । एक दिन पूर्व चारों भाई राम जी के कन्दुक क्रीड़ारम्भोत्सव में पुरस्कार स्वरूप श्री कौशिल्या जी के सद्यः धारण किये गये समस्त भूषण एवं वस्त्र जो मिले थे उन्हीं मणिजटित भूषण वस्त्रों से अपना सुन्दर श्रृंगार किये वह धाई आयी । उसे देखते ही राम जी माता की गोद से उछल कर उसकी गोद मे पहुँच गये । तब उस धात्री ने महाराणी जी से प्रार्थना की कि इस समय महाराज जी मझली महारानी (श्री कैकेयी) जी के प्राङ्गण में विराजते हैं और श्री रामलाल जी भी मझली माता जी के लिये मचल रहे हैं यदि ये अभी-अभी दुग्ध पान कर चुके हों तो मैं ले जाऊँ क्या ? कौशिल्या जी की आज्ञा पाकर धन्यावती श्री रामभद्र जी का पुनः श्रृंगार करके अनेक सैकड़ों श्री सखाओं के साथ ले चली । अनेकों दासियां पीछे-पीछे श्री राम जी के खिलौने ले कर चलीं ।।४-१८।। महारानी श्री कैकेयी जी का रम्य महल अनेक दासदासियों से युक्त तो था ही, अनेकों कृत्रिम (धातु-पत्थर आदि के) मणिजटित पशु-पक्षी यत्र-तत्र यथा स्थान बने थे । मृदगादि नाना मनोहर वाद्य सदैव बजा करते थे । रत्नजटित दण्डों में मणियों की झालर लगाकर अनेकों प्रकार की चाँदनी प्रांगण में छाई हुई थी । दिव्य रत्नजटित अनेकों स्वर्ण पात्र यथा स्थान सुशोभित थे । प्राङ्गण में बजते हुए मृदग की ध्वनि को मेघगर्जन जानकर छत के मयूर नाचते थे । प्रांगण में हाथीदाँत के बने

पलंग पर धर्म में तत्पर महाराज श्री दशरथ जी श्री कैकेयी जी के सहित बैठे हुए श्री भरतलाल जी का दुलार करते हुए शिशु को हंसाते थे, रत्नवेष्टित चंवर दोनों तरफ से दासियां डुला रहीं थीं उसी समय अनेक बाल मित्रों से घिरे धात्री धन्यावती के साथ श्री रामभद्र जी पिता-माता के पास पहुँचे ।।१९–२७।। उस समय अतसी पुष्पवत् श्याम श्री रामलाल जी दिव्य पीत वस्त्र कटि में, उषा कालिक शुक्र के समान प्रकाशमान नासामणि और अनेकानेक रत्नजटित आभूषणों से अलंकृत थे। धातृ की शिक्षा का स्मरण करते हुए नित्य की तरह पहले माता कैकेयी के पिता जी के चरणों पर सिर रख कर प्रणाम किया। दशरथजी मधुर मुसकान युक्त श्री रामजी का बार-बार सिर सूँघने लगे तब महारानी कैकेयी जी ने राजा की गोद से श्री रामलाल जी को अपनी गोद में बैठा कर बार-बार मुख चूमतीं सिर सूँघतीं एवं अनेक प्रकार से दुलार करती हुई, मुसकाते हुए राजा की ओर देख कर बोलीं ।।२८-३३।। "महाराज ! मेरी तो जैसी दृढ़ प्रीति बड़े कुमार बबुआराम में है वैसी भरतलाल में नहीं है।" राजा ने कहा देवि ! यह क्या कहने की बात है, यह तो मुझे ही नहीं समस्त पुरजनों-परिजनों को ज्ञात है। अभी राजा इतना ही कह पाये थे कि उसी समय अन्यान्य बालकों के साथ गेंद खेलते हुए श्री लक्ष्मणकुमार ने अनेक दासियों से घिरे वहीं पहुँच कर प्रथम मझली माता को और तब पिता जी के चरणों पर सिर रख कर प्रणाम किया। उस समय जब रानी–राजा गोद में लेने लगे तो दोनों के हाथों से दूर छटक–कर वहीं आंगन में गेंद खेलने लगे। यह देख श्री राम और भरत जी भी माता-पिता की गोद से कूद कर बालकों में जाकर गेंद खेलने लगे। चारों कुमार मझली महारानी के प्रांगण में एक साथ गेंद खेल रहे हैं यह खबर पाते ही श्री दशरथ जी की अन्य रानियाँ वहीं पहुँच कर महाराज को तीन तरफ से घेर कर तीनों रानियाँ स्थित हो गईं। उस समय अपनी सुन्दरियों से घिरे सिंहासनारूढ़ महराज ऐसे मालूम होते थे जैसे अप्सराओं से घिरे शची सहित देवराज इन्द्र हों ।। ३४-४० ।।इति तृतीयोऽध्याय ।।

———

चतुर्थ अध्याय

सूत जी के जरा सा विश्राम लेते ही कथा बन्द कर दिया ऐसा समझकर श्री शौनक जी ने प्रार्थना की कि हे महाभाग ! श्री रघुनन्द आनन्द का चरितामृत पान करते-करते मेरी प्यास तो और बढ़ी जाती है अतः रुकिये मत, यह आनन्दामृत पिलाते चलिये । सूत जी कहने लगे कि तब महाराज ने श्री कैकेयी जी को इशारे से सिखाया कि आज तुम्हारे आँगन में तुम्हारी सभी सौतें एक साथ ही आगई हैं अतः इनका सत्कार, माला, चन्दन, पान आदि से करो । मझली रानी ने अपनी सभी सपत्नियों का खूब सत्कार किया और सबको स्थलपद्म के इत्र से तर कर दिया ।।१–५।। तब महाराज अपनी सभी रानियों को सम्बोधित करके बोले—देवियो ! तुम्हीं लोगों के पुण्य प्रभाव से ये वंश वर्द्धक चारों सुकुमार कुमार उत्पन्न हुये हैं । जिसके पुत्र नहीं होता उस नर के पितरगण स्वर्ग में बड़े उदास रहा करते हैं । ब्राह्मणों ने मुझे कुल के भूषण रूप ये चार कुमार दिये है, जिससे वेदज्ञ ब्राह्मण सन्तुष्ट न रहें उसका जन्म व्यर्थ गया समझना चाहिये । इसलिये तुम लोग सर्व-सत् प्रयत्नों से वेदज्ञ ब्राह्मणों एवं विष्णुभक्त साधुओं को तुष्ट करके उनका श्री चरणामृत लो । उनके पाद जल-चरणामृत पीने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है । आप श्रीमती लोग इन कुमारों का बहुत-बहुत लाड़ प्यार करती हैं इसीसे मैं कहता हूं कि इन्हीं के लाड़ प्यार में हरदम व्यस्त रहने से किसी साधु ब्राह्मण की सेवा मे कोई त्रुटि न पड़ने पाये ।।६–११।।

राजा की बात सुनकर श्री राम प्रेम मूर्ति रानियों ने कहा कि हे राजन् ! आप तो अद्वितीय धर्म मूर्ति हैं । ये चारों कुमार तो हम सब साढ़े तीन सौ रानियों के प्राण ही हैं और सम्पूर्ण पुरवासियों के प्राण तुल्य प्रिय हैं । हम सब नित्य ही भगवान् श्री रङ्गनाथ जी से अञ्चल फैला-फैलाकर माँगती हैं कि जैसे अनुपम हमारे कुमार हैं ऐसी ही अपूर्व रूपवती चार कन्यायें भी कहीं भगवान् उत्पन्न कर दें जिससे किशोर होने पर इनका विवाह उनके साथ हो, हम इनको बहुओं के साथ देखें । जब श्वेत छत्र शोभित शत्रुंजयनामक महाप्राण्डील चतुर्दन्त गजराज पर राजमुकुट धारण किये हुए श्री रामलाल जी जनाकीर्ण सभ्य लोगों

से भरे हुए राजमार्ग से निकलेंगे; दोनों ओर अनेकों रङ्ग विरङ्गी चंवर चलती रहेंगी और अनेक वाद्ययुक्त चतुरङ्गिणी सेना आगे पीछे चलती रहेगी लोग युवराज राम की जय जयकार करते रहेंगे, और इसी मझली रानी के प्राँगण में इसी तरह (आज की तरह) हम आप सब एक रहेंगे और चारो राजकुमार यहीं आकर आपको, हमें प्रणाम करेंगे, वह छटा जब हम देखेंगी तो हम लोग अपने मनुष्य जन्म को सफल मानेंगी। सपत्नि की बात से सबसे अधिक प्रसन्नता मझली पट्ट महिषी श्री कैकेयी जी को हुई उन्होंने अनेकों बहुमूल्य रत्न-वस्त्र, 'स्वर्ण', गाय बालक राम पर निछावर करके वितरण करवाया ॥ १२-२५॥

यह देखकर कैकेयी जी की एक दासी जिसका नाम उसके नीच स्वभाव के अनुसार ही मंथरा था जो मन्द आचरण वाली त्रिवक्रा और क्रूरगामिनी थी वह कैकेयी को घूर-घूर कर एकान्त में चलने का इशारा करने लगी। तब कैकेयी ने मुसकाते हुए कौशिल्या जी से प्रार्थना की कि जीजी! वक्र गामिनी मंथरा लाल-लाल आँख किये घूर रही है यह आप सब देखती ही हैं, आज्ञा हो तो अलग जाकर इस कुटिला की बात भी सुन लूँ। ॥२६-३०॥

सपत्नियों से आज्ञा लेकर एकान्त में जाते ही कुब्जा ने कहा कि हे मुग्धे! सौन्दर्य गर्विते!! तुम अपने पूर्व वृत्तान्त को बिना जाने ही ऐश्वर्यमद-मत्त होकर घर में क्रीड़ा करते घूमती हो, और वहाँ से दूर एकान्त महल में जाकर रत्न-जटित पलंग पर बैठाकर पहले सुन्दर ताम्बूल बीड़ा देकर चँवर डुलाने लगी। पान खाकर महारानी ने कहा अरे! तुझे जो कहना हो जल्दी कह। मुझे क्यों रानियों के पास से उठाकर लायी है मेरा मन बबुआ राम में लगा है मैं जल्दी जाऊँगी। मंथरा ने ओष्ठ पर तर्जनी रखते हुये धीरे से कहा क्या रानी जी ने सौतों की बातें नहीं सुनीं जो राम को युवराज बनवाना चाहती हैं? उनकी बातें सुनकर तो मुझे आपके विवाह की बात याद आ गई। महारानी कैकेयी ने कहा कि मेरे स्वयंवर की कौन सी बात तुझे याद आ गयी ॥३१-३६॥

पंचम अध्याय

मंथरा कहने लगी—एक बार देवर्षि नारद जी राजा दशरथ के पास आए। राजा ने यथोचित पूजन प्रणाम करके पूछा कि महात्मन्! आपतो तीनों लोकों

में अबाध रूप से घूमते हैं कहीं कोई नवीन आश्चर्य देखा हो तो बताइये ॥१-४॥ नारद जी ने कहा कि मैं ब्रह्मलोक से पृथ्वी मण्डल पर आकर अनेक शहरों एवं तीर्थों में घूमा पर कैकयनरेश श्री अश्वपति जी की कन्या के समान अपूर्व सुन्दरी मैंने कहीं नहीं देखी। मैंने उसकी हस्तरेखा भी देखी थी कि उसके महान् यशस्वी, महा तपस्वी एवं महान् ज्ञानी अथच वीर पुत्र होगा, अतः आप अवश्य उसके साथ जैसे भी बने विवाह कीजिये। ऐसा कह कर नारद जी ब्रह्मलोक चले गये ॥५-१२॥ राजा दशरथ जी 'कैकयनरेश की कन्या कैसे प्राप्त हो' ऐसा चिन्तन करते ही थे कि उसी समय एक देवयोगिनी ने जाकर राजा से पूछा कि आप क्या विचार रहे हैं ? आपके पास अनेक अक्षौहिणी सैन्य, अकण्टक विशाल राज्य, सुयोग्य मन्त्रिमण्डल, रति से भी बढ़कर सुन्दरी साढ़े सात सौ पतिव्रता रानियाँ हैं। देवताओं को चकित कर देने वाला आपका प्रभाव है फिर आप किस शोक में उदास हैं ॥१३-१७॥

राजा ने कहा हे पण्डिते ! नारद जी कैकयकुमारी का रूप, गुण, भाग्य बखान करके मेरे हृदय में नई आग लगा गये हैं और कह गये हैं कि उससे विवाह करो। अब यदि मैं राजा अश्वपति के पास दूत भेजूँ तो लोग मेरा उपहास करेंगे कि परमधार्मिक सत्यसन्ध अथच वृद्धोपसेवक होकर रघुकुल भूषण दशरथ स्वयंवर की प्रतीक्षा न करके या विजय न करके राजा से कन्या भीख माँग रहे है ॥१८-२२॥ देवयोगिनी ने कहा—मैं अपनी माया से देवी और गंधर्वी तक को मोह सकती हूँ मानुषी किस गणना में है, मैं अभी ही कैकेयी तुम्हारे पास ला सकती हूँ। परन्तु यह सज्जनों का धर्म नहीं है, जो छल से परस्त्री या पर कन्या की इच्छा करता है उसे यमदूत गण बहुत-बहुत ताड़ना देते हुए घोर नरक में भेजते हैं। इसलिए मैं उसे तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए ही तैयार कर दूँगी। ऐसा कह कर वह योगिनी ग्रामों, जनपदों, नदियों, पर्वतों, बनों को आकाश मार्ग से पार करती हुई अल्पकाल में ही कैकय की राजधानी में नगर के बाहर एक सुन्दर तालाब पर उतरी। वह तालाब अनेकों पक्षियों एवं रङ्ग बिरङ्गी कमलों से परम शोभित था। उस तालाब का निःपंक जल साधुओं के हृदय के समान स्वच्छ एवं शीतल था ॥२२-३१॥

योगिनी ने विचार किया कि मैं यहीं पर्णकुटी बनाकर कायक्लेश का ढोंग रचकर महान् तपस्विनी के रूप में अपना विज्ञापन करूँ। यहाँ लोग नित्य स्नान करने आते ही हैं प्रसिद्धि सुनकर जब कभी राजकन्या मेरे पास आयेगी तो उसे अपने वाक्जाल में फँसाकर उस राज कन्या के ले जाने से जब महल में प्रवेश करूँगी तो मेरा सारा काम बन जायेगा। ऐसा निश्चय करके वह योगिनी वहीं तालाब पर रहने लगी ॥३२-३६॥

मंथरा ने आगे कहा कि—नगर की अनेक संभ्रान्त नारियों से सुनकर तुमने भी स्नान करने जाकर तपस्विनी को देखा, तुमतो सब जानती ही हो अथवा निन्दनीय बात होने से तुम भूल गई होगी, परन्तु मैं तुमसे प्रेम करने के कारण न भूल सकी। तुम्हें नख सिख तक परम सुन्दरी देखकर अंदाज से अश्वपति राजा की कन्या जानकर कहने लगी कि अहा ! ऐसा अप्रतिम सुन्दर रूप तो मैंने तीनलोक चौदहो भुवन में कहीं नहीं देखा है, तुम्हारा रूप और लक्षण तो किसी चक्रवर्ती की महिषी होने योग्य है ऐसा कहकर योगिनी चुप हो गई। ३७-४५॥ तब तुम हँसते हुए प्रार्थना करके उस कपट योगिनी को अपने साथ महल में लिवा ले गई और अपनी माता से प्रार्थना करके अपने राज प्रासाद के ऊपरी खण्ड में उसका वास स्थान देकर उसका समस्त सुख सुविधाओं का प्रबन्ध कर दिया। एक दिन योगिनी ने तुमसे कहा कि राजपुत्रि ऐसे यशस्वी तुम्हारे पिता, शीलमति माता, आश्चर्यमय भवन, काम की सेना समान सखियाँ, माता-पिता का यश बढ़ाने वाला महाबली तुम्हारा भाई और ऐसा देव-दुर्लभ तुम्हारा कान्ति यौवन सम्पन्न रूप और कहाँ तक कहा जाय संसार में कोई भी तुम्हारे तुल्य नहीं है। परन्तु इतना होते हुये भी तुम्हारी जवानी व्यर्थ जा रही है। इस तुम्हारे रूप यौवन को सफल करने वाला कोई तुम्हारे योग्य रूप यौवन सम्पन्न चक्रवर्ती नरेश तुम्हें अपनाये तभी तुम्हारा जीवन सफल है, ऐसा कहकर वह जन-मन मोहिनी—योगिनी चुप हो गयी। ॥४६-५५॥

षष्ठ अध्याय

मंथरा ने आगे कहा कि योगिनी की उपर्युक्त बातें सुनकर तुम (कैकेयी)

ने कहा कि 'हे योगिनी जी ! आप तो परोपकार के लिये ही साधन करते हुये समस्त पृथ्वी पर घूमा करती हैं। जो भगवद ध्यान में तत्पर भगवान् के शरणागत होते हैं वे सभी परोपकारी होते हैं। अतः कृपा करके मुझे ऐसा पति प्राप्त कराइये जो महा प्रतापी, शत्रु विजयी, धर्मज्ञ, सुशील सदाचारी और कहाँ तक कहूँ सर्व लक्षण सम्पन्न राज शार्दूल हो। तुम्हारी (कैकेयी की) बात सुनकर तुम्हें अपने वश में जानकर योगिनी कहने लगी ।।१-६।। हे रम्भोरु ! वरानने ! यदि तुम्हें मेरा विश्वास है तो सुनो, एक ऐसा महाप्रतापी सुदर्शनीय राजा है जिनको देवता दैत्य असुरादि सभी डरकर प्रणाम करते हैं और जो समस्त देवासुर से वन्दनीय ब्रह्मा-विष्णु से सेवित परब्रह्म की आद्यपुरी-अयोध्या जी का प्रशासन करते हैं। जिनके राज्य में देवता, किन्नर, सिद्ध, चारण, मनुष्यों में चारों वर्ण, चारों आश्रम सभी धर्म वाले अपने-अपने धर्म में तत्पर रहते हैं। वहाँ के स्त्री-पुरुष सभी रति एवं काम के समान सुन्दर हैं, वहाँ अनेकों रङ्ग के कमलों से एवं रङ्ग-विरङ्गी जलपक्षियों से सम्पन्न विविधाकार के मणिजटित घाटों से शोभित श्री सरयू नदी है, श्री सरयू जी के किनारे के प्रासाद-महल तो ऐसे सुन्दर हैं मानो देवताओं की कल्पना से प्रसूत हैं। उन सरयू जी के दर्शन-मात्र से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और दर्शक परम्पद महा बैकुण्ठ के अधिकारी हो जाते हैं ।।६-१२।। उस अयोध्यानगरी के शासक इस समय श्री दशरथ जी हैं, जो महान् भाग्यवान्, धर्मज्ञ सभी धर्मात्माओं के रक्षक, राजाओं में मुख्य, ज्ञानियों के सत्संगी एवं चक्रवर्ती हैं। शत्रुहन्ता, सत्यसन्ध महाराज दशरथ जी महेन्द्र के समान दुर्धष, तेज में मानो दूसरे अग्निदेव, शंकर जी के समान कृपालु, माता-पिता के समान सहिष्णु, वृहस्पति के समान ज्ञानी और कामदेव से भी बढ़कर सुन्दर हैं, जिन्होंने अपने महान् धनुष की टंकार मात्र से शत्रुओं का गर्व खर्व कर दिया है। हे सुलोचने यदि किसी तरह उन दशरथ जी को पति रूप में प्राप्त कर लो तब तो तुम्हारे इस सौन्दर्य एवं युवावस्था की सार्थकता है ।।१३-१८।। ऐसा सुनकर तुम (कैकेयी) ने योगिनी से कहा कि—जैसा आपने कहा ऐसे ही नारद जी भी एक दिन कह रहे थे, और तभी से मैं उन राजसिंह अयोध्यानरेश को चाहने लगी है। आज आपकी

बात से मेरी उत्कण्ठा और भी बढ़ गई, अब कोई ऐसा उचित एवं सुन्दर उपाय बताइये जिससे वे मेरे पति बनें। योगिनी ने कहा कि उचित उपाय तो यह है कि तुम अन्न-जल का परित्याग करके उदासीनता धारण कर लो तो तुम्हारा काम जल्दी बन जायेगा। तुमने योगिनी के उपदेश से वैसा ही किया। तुम्हारी सखियों ने देखा कि राजकुमारी जी अपने वस्त्रों तक का ख्याल नहीं रखतीं, न पान खातीं हैं न शृंगार करती हैं न सजावट या नृत्य तमाशा देखती हैं सुन्दर सखियों से घिरी रहने पर भी हरदम घुटती सी रहती हैं, भीतर भीतर रुदन को दाब रखने से हरदम हिचकी लेती रहती हैं।। १९-२७।। तब सखियों ने एक दिन तुम्हारी माता से तुम्हारी दशा बताकर कहा कि जबसे वह मायाविनी योगिनी आयी है तबसे राजकुमारी जी की यह दशा है। उसी ने अनेक राजाओं की चित्र-विचित्र कथायें सुनाकर राजकुमारी जी पर कोई जादू सा कर दिया है। सखियों की बात सुनकर महारानी जी तुरन्त अपनी प्राण-प्रिय पुत्री कैकेयी के (तुम्हारे) पास गई और मलीन एवं कृश देख कर पूँछने लगीं ।।२८-३६।। ।। इति षष्ठोऽध्याय: ।।

सप्तम अध्याय

हे पुत्रि ! तुम्हारी यह क्या दशा हो गई, मुझसे बताओ तो मैं तुम्हारे रोग नाश का यत्न कराऊँ। तब तुम (कैकेयी) ने कहा कि माता जी यह तो मेरी प्रकृति ही है, मैं क्या करूँ किसी वस्तु से मुझे तृप्ति ही नहीं हो रही है। यह सुनकर तुम्हारी माता योगिनी के पास जाकर कहने लगीं कि आपके पास रहने से मेरी कन्या की क्या दशा हो गई। तपस्विनी होकर भी क्या आप नहीं जानतीं कि युवती कुमारी राजकन्या से एकांत में राजाओं का गुण नहीं कहना चाहिये इसी तरह युवकों से भी सुन्दरियों की चर्चा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि मन का कोई विश्वास नहीं। पतिव्रताओं एवं धर्मध्वजियों का मन विचलित हो जाता है तब कुमारियों की क्या बात है। दूतियां ही युवकों की चर्चा करके कुल-वधुओं के मन को विक्षिप्त करतीं है ।।१-७।। योगिनी ने कहा—देवि ! मैं लोक की शुभाशुभ बात को जानतीं हूँ, पर तुम्हारी कन्या ने ही मुझसे पूछा था

कि तुमने कौन-कौन देश देखा है कहाँ का राजा कैसा है ? तब मैंने सर्वोत्तम नगर अयोध्या तथा वहाँ के युवक एवं शूर धर्मात्मा राजा दशरथ का भी परिचय बतलाया, जिसे सुनकर तुम्हारी कन्या अनायास ही उन पर आकृष्ट हो गई । मैं कोई उच्चाटन या मोहन आदि नहीं जानतीं ।।८-१२।। योगिनी की बात सुनकर रानी वहाँ से चली गई और रात में रानी की उदासी देखकर जब राजा अश्वपति ने अपनी शपथ देकर उदासी का कारण पूछा तब रानी ने कहा कि अयोध्या नरेश दशरथ के साथ रूपमालिनी (कैकेयी) का विवाह कर दीजिये, क्योंकि योगिनी ने दशरथ का वर्णन सुनकर कन्या दशरथ पर पूर्ण-रूपेण आकृष्ट हो चुकी है । राजा ने भी इसे स्वीकार कर लिया ।।१३–१९।।

प्रातः काल नित्य नियम करके राजा सभा में गये जहाँ नित्य की तरह नियमानुसार सभी सभासद मन्त्रिमण्डल आदि यथा स्थान उपस्थित थे । राजा के सभा में विराजने के बाद राज-पुरोहित श्री गर्ग जी आये । राजा ने उठकर उनका स्वागत किया और रत्नखचित आसन पर बैठाकर मन्त्रियों से कहा कि यदि सभी की सलाह हो तो राजकुमारी रूपमालिनी (कैकेयी) का विवाह अयोध्यानरेश चक्रवर्ति दशरथ जी से कर दिया जाय ।।२०-२६।। इस पर सभी सभासदों ने राजा की बड़ी प्रसंशा की, परन्तु एक मन्त्री ने कहा कि सुनता हूँ दशरथ जी के सैकड़ों रानियाँ हैं । सैकड़ों पत्नियों वाले पुरुष की युवा अवस्था कब तक टिक सकती है अतः अब तो वे अवश्य वृद्ध हो चले होंगे, और यदि न भी वृद्ध हों तो भी अनेक पत्नी वाले और पुत्र–सन्तान रहित को राजकुमारी कैसे दी जा सकती हैं ।।२७-३०।। तब पुरोहित गर्ग जी ने कहा कि कई वर्ष पूर्व एक बार कैलाश पर अलकापुरी में कुबेर के यज्ञ में सभी देवता सपत्नीक पधारे थे, शिव, पार्वती, नन्दी, कार्तिकेय एवं गणेश आदि भी थे । यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया, रावण के राक्षस विघ्न करने नहीं पहुँचे । बिदाई के समय लोगों ने भगवान श्री शंकर जी से पूछा कि त्रिलोकोद्वेजक रावण कब मरेगा ।।३१–३९।। भगवान श्री शंकर जी ने कहा जब दशरथ अयोध्यानरेश होंगे तब उनकी तीन पट्टरानियों, कान्तिमती (कौशिल्या), रूपमालिनी (कैकेयी) और गुणवती (मागधी-सुमित्रा) से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम से चार रूप में स्वयं परब्रह्म

परमात्मा अवतार लेकर रावण एवं रावण के अनुयायियों का नाश करेंगे। इसलिये हे देवगण आप सब चिन्ता न करें ।।४०-४५।। यह पुरावृत्त कहकर गर्ग जी ने उस मन्त्री की बात काटकर विवाह का समर्थन किया। तब राजा अश्वपति ने प्रार्थना की कि गुरुदेव आप अयोध्या जाकर दशरथ जी से 'कैकेयी का पुत्र राजा बनेगा' ऐसी प्रतिज्ञा कराकर दशरथ को विवाह के लिए लिवा लाइये। तब महर्षि गर्ग ने फलदान (टीका) का सामान लेकर अनेक राजकर्मचारियों तथा संभ्रान्त नागरिकों के साथ विमलापुरी के लिये प्रस्थान किया ।।४६-५२।। यह समाचार सुनकर तुम (कैकेयी) ने योगिनी से प्रार्थना की कि आप अयोध्या जाकर महाराज को किसी भी तरह मुझे अपने चरणों में दासी बनाने को राजी कीजिये, पिता जी की प्रतिज्ञा में मैं महाराज को नहीं बाँधूंगी आप पहले ही जाकर मेरी प्रार्थना महाराज से निवेदन कीजिये। यदि पिता जी की प्रतिज्ञा के कारण महाराज ने मुझे ठुकरा दिया तो मेरी मृत्यु निश्चित है। गर्गाचार्य के पहुँचने के पहले ही योगिनी ने दशरथ जी से जाकर सारी बातें समझा दीं ।।५३-५६।। जब गर्ग जी अयोध्या पहुँचे तो महाराज ने अर्घ्यपाद्य आसनादि द्वारा यथोचित पूजन करके कहा—"आज हमारी इस पुरी का एवं यहाँ के सभी लोगों का बड़ा भाग्य है जो आप ऐसे महात्मा श्री हरिभक्त ब्राह्मण हमारे घर आये। आप ऐसे महात्मा तो समस्त जगत को पवित्र करने के लिये ही घूमा करते हैं ।।५७-६२।।

ब्राह्मण वैष्णवाश्चैव गेहेग्रामे च पत्तने।
यत्र-यत्र न वैयान्तिव्याघ्र क्रोष्ट्र गृहाश्चते ।।६३।।

जिस गाँव, घर और शहर में ब्राह्मण तथा वैष्णव नहीं जाते वे घर, गाँव एवं नगर बाघ एवं जम्बुक (गीदड़, कोल्हिया, सीगट) के रहने के बिल के समान हैं। इस प्रकार प्रार्थना करके उन्हें राजमहल में ले गये और महल में गर्ग जी के आसन स्वीकार कर लेने पर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई ।।६३-६६।। इति सप्तमोऽध्यायः

अष्टम अध्याय

षट्रस समन्वित चतुर्विधि भोजन करने के लिये प्रार्थना करने पर गर्ग जी

ने कहा कि राजन ! आपके देखने से मेरा सारा संशय नष्ट हो गया। सूर्यवंशियों से मनु इक्ष्वाकु से लेकर आज तक किसी ने भिक्षुकों को कभी निराश नहीं किया, कोई भी अन्य स्त्री किसी रघुवंशी का हृदय नहीं प्राप्त कर सकी और सशस्त्र शत्रु ने किसी रघुवंशी की पीठ युद्ध भूमि में नहीं देखा। रघुवंशियों के यश से सारी पृथ्वी तो व्याप्त है ही स्वर्ग में देव कन्यायें और पाताल में नाग कन्याएं रघुवंशियों का चरित नित्य मङ्गल गीति के रूप में गाया करती है, रघुवंश का यश कहने में शारदा भी पूर्ण समर्थ नहीं हैं। आपका सुयश सुनकर कान तो कृतार्थ हो ही गया था अब नेत्रों की सफलता के लिये मैं आपके पास आ गया हूँ। वैसे तो मैं दूत बन कर आया हूँ। यदि आप मेरा आना सफल कर दीजिये तब तो मैं प्रसन्नता पूर्वक आपका भोजन स्वीकार करूँ ॥१-९॥ योगिनी की बातों का स्मरण करके जब कौशलेश ने आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा की तो गर्ग ने कहा कि मैं केकयधिपति अश्वपति का भेजा हुआ हूँ। हमारे राजा अपनी कन्या आपको "मेरा दौहित्र आपका उत्तराधिकारी राजा हो" इस एक प्रतिज्ञा पर देना चाहते हैं और मेरी भी यही इच्छा है। अतः अपनी प्रतिज्ञानुसार इसे आप पूरी कीजिये ॥१०-१५॥ तब राजा दशरथ ने योगिनी द्वारा सुना गया तुम्हारा प्रेम सन्देश स्मरण करके कहा कि मैंने पुत्र के लिये ही विवाह किया है, अतः मुझ अपुत्रक को पुत्र होने की आशा हो तो मैं और भी कई विवाह कर सकता हूँ। यदि मुझे पुत्र होंगे भी तो वे—

ते चापिस्वस्य वंशस्य मर्यादां च कुमारकाः।
नत्यजंति माहात्मान आदाविक्ष्वाकुनाकृतम् ॥१८॥

मेरे महान् आत्मवंशी पुत्र-गण मेरे पूर्वज इक्ष्वाकु की बनाई मर्यादा को कभी न तोड़ेंगे यदि अन्य पत्नियों से न हुआ और आपकी राजकुमारी से ही मुझे पुत्रलाभ हुआ तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। इस तरह नीति में लपटी हुई राजा की बात सुनकर भविष्य द्रष्टा गर्ग जी ने ब्राह्मणों सहित भोजन करके टीका चढ़ाया ॥१९-२०॥ दूसरे दिन मन्त्रियों पर अयोध्या की संरक्षता का भार देकर बरात लेकर

जाकर विधिपूर्वक तुम्हारा (कैकेयी का) पाणिग्रहण किया । बिदाई के समय अश्वपति ने दहेज में खच्चर घोड़े, उत्तम उत्तम कम्बल, मृग व्याघ्रादि के चर्म आदि दिया । आते समय मैं (मन्थरा) भी तुम्हारे (कैकेयी के) प्रेम से यहाँ चली आई । यहाँ तुम राजा के साथ अनेक दिव्यभोगों को भोगते हुये जहाँ तुमने अपनी जवानी को सफल किया, वहीं अपने विवाह की प्रतिज्ञा को भी भुला दिया । देखो तुम्हारी सौतें क्या कहती हैं कि राम युवराज हों । यदि राम को युवराज बनाया गया तो तुम्हारी दासियाँ हम सब तो निरुत्साह ही हो जायेंगी ।।२१-२८।। यह सुनकर (कैकेयी) ने कहा तेरी बातें तो कहानी सरीखी रोचक लगती थीं इसी से झूंठे किस्से सुनती रही । वैसे :—

स्वयम्बरे नृशार्दूलः मयावृत्तः स मंथरे ।
कर्मणात्वांच जानामि दैत्यकन्यां च पापिनी ।।३०।।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित पद्मपुराण, पर्व २४ में कैकेयी स्वयंवर की कथा बड़े विस्तार से है उसमें सभी राजा गये थे, जनक और दशरथ दोनों मित्र साथ-साथ ही गये थे—

तत्र सुन्दरसर्वांगा चारुलक्षणधारिणी ।
नितरां कैकेयी देजे कलानां पारमागता ।।२४।।५।।
तस्याःवर्ष शतेनापि दुः शक्यं रूपवर्णनम् ।।८५।।
पित्रा प्रधारितंतस्या कोऽस्या योग्यः भवेद्गः ।
स्वयं रुचितमेत्रेयं गृह्णातिवित्ति विसंशयम् ।।८६।।
तदर्थं पार्थिवाः सर्वे वसुमत्यामुपाहृताः ।।८७।।
गतोदशरथोऽप्यस्य जनकेन सहभ्रमन् ।
स्थितःस तादृशोऽप्येतान् लक्ष्म्या प्रच्छाद्य भूपतीन् ।।८८।।
मञ्चेषु सप्र पञ्चेषु निविष्टान् वसुधाधिपान् ।
प्रत्येकमेक्षतोदारान् प्रतीहार्या निवेदितान् ।।८९।।

भ्राम्यन्ती सा ततः साध्वी नरलक्षण पण्डिता ।
कण्ठे दशरथेन्यास दृष्टिनीलोत्पलस्रजम् ॥६०॥
भूपाल निवहस्थं तं सा ययौ चारु विभ्रमा ।
राजहंस यथा हंसी वकवृन्दव्यवस्थितम् ॥६१॥
भावमालागृहीतेऽस्मिन्न्यस्ता या द्रव्यमालिका ।
पौनरुक्त्मांप्रपेदेऽसौ लोकाचारकृतास्पदा ॥६२॥

महारानी कैकेयी ने स्वयंवर में दशरथ जी को जयमाल दिया था इसका विशद वर्णन कृत्रवासी रामायण आदि कांड सर्ग २५ में है । यथा—

गिरिव्रज नगरेते केकयेर घर, सुखे राज्य करे राज्या अनेक वत्सर ।
कैकेई नामते कन्या परमा सुन्दरी, तांर रूपे आलो करे सेईराजपुरी ।
स्वयम्बरा हवे कन्या हेन आछे मन, पृथिवीर राजाके करिल निमंत्रण ।

× × × ×

रथेत्वरा दशरथ सभा स्थाने, सभा करे राजगण बसिछे जेखाने ।
स्वयंवर स्थाने एल कैकेयी सुन्दरी, ताँर रूप आलोकरै गिरिराज पुरी ।

× × × ×

परम सुन्दर राजा राज चक्रवर्ती. दशरथ, तुल्य नाहि भूमिते भूपति ।
दशरथ थाकिते बरि वे कोन जने, एई युक्ति अन्नेमुखे करे राज गने ।
प्रत्यक्षे देखिल कन्या सव राज गणे, सबारे भूलिल दशरथ दरशने ।
धनपेये तुष्टे येन दरिद्रेर मति, गले माला दियावले तुभिहवी पति ।
दशरथ भूपति गले माला दोले, लज्जाय भूपति गण माथ नाहि तोले ।
राजगण बले कन्या बड विचक्षणा, दशरथाकिते से वरिवेकोन जना ।
राजगण परस्पर करि-आसमान, विदाय लइया गले निज निज स्थान ।
कन्यादान करे राजा परम कौतुके, मन्थरा नामेते चेड़ी दिलेन जौतुके ।

नर केशरी महाराज को तो मैंने स्वयंबर में जयमाल देकर बरण किया

था। अरी पापिनी ! जानती हूँ कि तू दैत्य कन्या है इसी से अपने कर्मों द्वारा बेटा राम का विरोध करती है।

ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता ॥३१॥
जिह्वायाश्छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनि।
नेत्रेयाः पातनं चैव नासिकायन विशेषतः ॥३२॥
अयंपाप समूहस्ते वक्र रूपेण वर्तते।
पृष्ठोपरि महापापे श्री रामे क्रूर दर्शिनि ॥३३॥

री महापापिनी ! यदि श्री राम में तेरी ऐसी ही बुद्धि है तो तेरी जीभ और आंख सर्वथा निकाल लेनी चाहिए और नासिका भी काट लेनी चाहिए। तेरे पाप समूह ही कूबर रूप से तेरी पीठ पर एकत्र होकर स्थिर हैं। इतना कहकर अपने हस्त-कमल से मन्थरा को मारने लगीं। इधर जब एक घड़ी हो गयी तो महाराज ने शत्रुघ्नकुमार को भेजा कि बेटा अपनी मझली माँ को बुला लाओ। शत्रुघ्न जी अपने मित्रों सहित जाकर बोले माँ ! माँ !! जल्दी मन्थरा सहित नीचे आँगन में चलो, पिता जी बुलाते हैं। ऐसा कहकर कैकेयी जी का हाथ पकड़ कर ले चले। मंथरा ने पुनः रानी की साड़ी पकड़ कर कहा कि महारानी जी जरा रुककर सुनिये तो। तब शत्रुघ्न के मित्रों ने मंथरा से कहा कि अरी त्रिवक्रे मंझली माता का वस्त्र छोड़ दे नहीं तो मार खायगी ॥४०॥

इति अष्टमोऽध्यायः

नवम अध्याय

मन्थरा ने बालकों के डाँटने पर उन्हें अपने हाथों की अँगुलियाँ चटकाकर कोसना शुरू किया तो शत्रुघ्नकुमार ने अपना गेंद फेंककर उसके कूबर पर मारा जिससे वह हाय-हाय करती हुई गिर पड़ी और बालकों सहित शत्रुघ्नलाल हंसने लगे और माता की अँगुली पकड़ कर पिता जी के पास ले चले। मन्थरा भी गिरती-पड़ती राजा के पास जाकर सिर और छाती पीट-पीट कर रोते हुये बोली ॥१-६॥ मन्थरा ने कहा 'राजन् !' देखिये छोटे कुमार ने अपने वज्र समान गेंद से मारकर मेरे पृष्ठवंश (रीढ़) को तोड़ दिया, और आपके घर में

मुझे सब कुब्जा कह कर बदनाम करते हैं। मेरे कूबर नहीं है मैं तो स्तनों के भार से झुक गई हूँ।

स्तनभारेण नम्राहं न तु कुब्जंमयि स्थिरम् ॥९॥

परन्तु इस समय सुमित्रानन्दन ने मुझे सचमुच कुब्जा बना दिया ॥७-१०॥ इसके बाद वह चण्डी कुब्जा सुमित्रा जी से बोली कि छोटी रानी जी आपने ही अपने लड़के को सिखाकर मुझे मारने भेजा था। सुमित्रा जी ने कहा कि मैंने नहीं सिखाया पढ़ाया, अरे बच्चों का तो स्वभाव ही अपने प्रिय जनों से रूठने, रोने, झगड़ने, मारने, पीटने का होता है। तुम तो मौसी (परम आत्मीय) बनती हो तब मुझे क्यों उलाहना देती हो ॥११-१२॥ तब तक श्री राम जी की धाय-कन्या सुन्दरी ने कहा कि पापिनी! कहीं चार पाँच वर्ष के बालक के खेल का अपराध माना जाता है, कपड़े की गेंद क्या लौहमयी गदा थी जो तुम्हारा रुदन ही नहीं बन्द होता। मन्थरा ने कहा तू मुझे बार-बार पापिनी क्यों कहती है, यह वज्र सरीखा गेंद तुझे लगता तो जानती! तू तो स्वयं बड़ी धूर्ता है, न तू राम को यहाँ लाती, न ये सब उपद्रवी लड़के यहाँ आकर मुझे तंग करते। गेंद के लगने से इतना विलाप प्रलाप करते मन्थरा को देखकर सभी रानियाँ एवं बन्दियाँ धीरे-धीरे हँसने लगीं ॥१४-२३॥ महाराज ने हँसकर कहा भद्रे सुन्दरी! रुदन मत करो, बुलवाकर तुम्हारी चिकित्सा करवा देंगे। तुम्हारी रीढ़ मे हल्दी का लेप करा देंगे। मन्थरा ने कहा महाराज। मुझे क्यो ठगते हैं—जले पर नमक रगड़ते हैं, इसका फल मैं कभी दिखा दूंगी :—

कदापिह्यस्य वाक्यस्य फलं प्राप्स्यसी भूपते ॥२६॥

इस पर जब (कैकेयी) ने बड़े जोर से डाँटा और अन्य रानियों ने भी दण्ड-धारिणी दासियों ने पिटवाने की धमकी दी तो मन्थरा डर और लज्जा के मारे वहाँ से भाग गई। शत्रुघ्नकुमार तो मन्थरा के राजा के समीप आते ही घर से बाहर भाग गये थे, राजा भी हँसते हुए राम को गोद में लेकर कौशिल्या भवन में चले गये अन्य रानियाँ भी अपने-अपने प्रासाद में गईं ॥२४-२९॥ सूत जी से शौनक ने पूछा कि अयोध्यापुरवासी सभी राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न चारों

राजकुमारों को प्राण के समान मानते थे। सच है जिनकी चित्तवृत्ति श्री राम जी में न लगी वे साक्षात् पशु ही है :—

येषांचेतो नवै रामेलग्नं ते पशवः स्मृतः ॥३१॥

ब्रह्मादि सभी देवाधिदेवगण, सनकादि सभी तपोधन, शेषादि सभी पार्षद, कमलादि सभी विभूतियां, इन्द्रादि सभी देवता मनु आदि सभी ज्ञानी लोग एवं योग में तत्पर सभी योगी-लोग स्त्रियों की कौन कहे पुरुषों के चित्तहारक रूप वाले श्री राम जी की ही उपासना करते हैं :—

सर्वे राममुपासंते योगिनोयोग तत्पराः।
पुंसां मोहनरूपे च नारीणं चित्तह्यरके ॥

तब मन्थरा ही क्यों द्वेष करती थी वह पूर्व जन्म की कौन थी ? कृपा करके बताइये ॥३२-३६॥

इति नवमोऽध्यायः

दशम् अध्याय

सूतजी ने कहा कि जब श्रीरामराज्य में मंथरा ने विघ्न किया तो सभी अयोध्यावासी आश्चर्य में पड़ गये। उसी समय महातेजस्वी परम भगवद्भक्त लोमशजी आ गये। उन चिरजीवी महर्षि को प्रणाम करके सभी पूछने लगे कि महर्षे ! जब सभी लोक श्रीरामजी से प्रेम करते हैं तो फिर यह मंथरा क्यों द्वेष करती है ? लोमशजी ने कहा कि दैत्यर्षि प्रह्लाद पुत्र महावीर परम ब्राह्मण भक्त दैत्यराज विरोचन की पुत्री मंथरा ही यह मंथरा है। उस समय जब विरोचन ने देवताओं का राज्य लड़कर छीन लिया तब देवतागणों ने लज्जित एवं दुखी होकर गुरुदेव वृहस्पति की शरण में जाकर अपने दुःखमोचन का उपाय पुछा ॥१-१०॥ वृहस्पति ने कहा कि दैत्यराज परम धर्मात्मा हैं। तुम लोग ब्राह्मण बनकर जाओ और उनसे दान की प्रतिज्ञा कराकर उनकी आयु मांग लो। वे तुम लोगों के समान विषयी नहीं है वे देह को चंचल नाशवान जानते हैं तुम्हें अपनी आयु दे देंगे। जब देवतागण ब्राह्मण बनकर दैत्येन्द्र के पास गये और उनके बचनबद्ध होने पर उनसे देहत्याग के लिये कहा तो उन्होंने बड़े जोर

से हँसकर कहा कि अच्छी बात है आप मेरे प्राण को ले जाइये मुझे शरीर और धन प्राण रखने से क्या लाभ है ।।११-२४।।

आश्रित्य मानुषं देहं नोपकारायकल्पते ।
न कृता विप्रसेवा च तेन किं नर जन्मना ।।२५।।

मनुष्य शरीर पाकर जिसने परोपकार एवं विप्र सेवा नहीं की उसके मनुष्य होने से क्या हुआ । यह कहकर धर्मात्मा विरोचन ने शरीर त्याग दिया और देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि के बीच वे महाभाग विमान पर बैठकर चतुर्मुख ब्रह्मा के सत्यलोक को चले गये । देवता लोग परम हर्षित हुए और दैत्यगण दुःख समुद्र में डूबने उतराने लगे ।।२५-३०।। एक बार बहुत से दैंत्यों ने एक सभा करके यह विचार किया कि महाधूर्त देवता लोग हम दैत्यों के नाश में लगे रहते हैं, छल से हमारे राजा विरोचन का प्राण लिया अब हम क्या करें ? किसकी शरण जायें । इसी बीच में विरोचनसुता—असुर कर्म में पंडिता मंथरा ने स्वयं को दैत्यरक्षण में समर्थ मानकर कहने लगी कि तुम लोग निर्भय घूमो, मैं अपनी विद्या से देवताओं के नाश में लग जाती हूँ, मैं तुम्हारी रक्षा कर लूंगी, चल सको तो लड़ने चलो ।।३१-५।। मंथरा का वक्तव्य सुनकर सभी दैत्य बड़े प्रसन्न होकर युद्ध यात्रा की तैयारी करने लगे, जिनमें मय, शम्बर, बाण, बलि, हयग्रीव, शंकुशिर, त्रिपुरनिकषी दैत्यगण, पुलोमा, कालकेय, आह्लादादि महाबली दुष्ट-चित्त वाले दैत्यगणों ने अपने-अपने वाहन रथ, हाथी, घोड़ा, शूकर, नीलगाय, मृगा, खच्चर, सिह, गर्दभ, बकरा तथा शुतुरमुर्ग और मयूरादि बिशालकाय पक्षियों पर बैठकर, अनेक बाजा बजाते सैन्य सहित देवलोक पर चढ़ाई की ।।३६-४१।। दैत्यों की इस तैयारी एवं प्रस्थान की खबर दूतों से पाकर देवराज इन्द्र ने वायु, वरुण, गणेश, गुह (षण्मुख), वसु, भैरव, अर्यमा, बलाहक, एवं चण्ड आदि वीरों को आज्ञा देकर स्वयं बज्रपाणि इन्द्र ऐरावतारूढ़ होकर आगे बढ़कर दैत्यों को रोका और महाभयंकर युद्ध करके दैत्यों को भगा दिया, तब दैत्यगण मंथरा की शरण में गये और मंथरा भी अपनी विद्या से देवताओं का विनाश करने घर से शीघ्र ही निकल पड़ी ।।४२-४६।। इति दशमोऽध्यायः

एकादश अध्याय

अलक्ष्यरूप से मंथरा ने युद्धभूमि में जाकर, इन्द्र आदित्य, महेन्द्र, अश्विनी, विश्वेदेव, बसु, रुद्र, विनायक और वरुण आदि सभी प्रधान-प्रधान देवताओं के सैनिकों की गणना करके सबके बाहनों को पाश में बाँधकर भूमि पर गिरा दिया। ऐरावत के गिरते ही इन्द्र सौ गज से कूदकर सब देवताओं को छोड़कर भागे। इसी तरह वरुण ग्राह को छोड़कर, अग्नि बकरा, वायु मृग, देवी सिंह, आदित्य घोड़े, गणेश मूषक, भैरव श्वान, नीलकण्ठ (शिव) नन्दी, कार्तिकेय मयूर, यमराज भैंसा और सोमराज रथ छोड़ कर भागे। विरोचन सुता मंथरा ने सबके वाहनों को अपने भयंकर पाश में बाँध लिया, देवतागण लज्जित होकर मुँह ताकने लगे ॥१ ९॥ उस समय गन्धर्व लोग पुकार-पुकारकर जोर-जोर से कहने लगे कि—हे अहल्या संगकर्त्ता देवराज अपना ऐरावत छोड़कर कहाँ चले गये ? गुरुपत्नीगामी निशाकर चन्द्रमा कहाँ हैं ? स्त्रीरूपी विष्णु के पीछे दौड़ने वाले प्रलयकर्त्ता शंकर कहाँ हैं ? पार्वतीजी के मुख को देख जिनकी आँख पीली हो गई, वे धन एवं रण में मत्त रहने वाले मंद बुद्धि कुवेर कहां हैं ? अपने बड़े भाई की पत्नी तारामती से बलात्कार करने वाले देवगुरु बृहस्पति कहाँ हैं ? ए सब बड़े-बड़े देवगण हरदम भोग में ही रत रहते हैं प्रजारक्षण में नहीं। हम लोगों को रणांगण में बलि की बहन मंथरा पीड़ा दे रही है ॥१०-१५॥ इस प्रकार देवताओं को बुरा भला कहते पीड़ित गन्धर्वों को देखकर गंधर्वराज विश्वावसु ने अपने गन्धर्वों को डांटते हुये कहा कि देवगण हम लोगों के पालक हैं उनकी निन्दा मत करो। तुम लोग तो गुणों का परित्याग करके दुर्गुण का ही स्मरण करते हो जैसे कोल शूकर वन में समस्त फलों को त्यागकर कीचड़युक्त कमल की जड़ को ही खाता है ॥१६-१७॥

नारायणस्य चांगानि देवा ह्येते महाबलाः ।
एतान्निन्दन्ति ये पापास्तेवै नरक गामिनः ॥१८॥

ये महाबली देवगण नारायण-परमात्मा के अंग (शरीर) हैं जो इनकी निन्दा करता है वह नरकगामी होता है ॥ जो पापमूढ़-व्यक्ति देवता, साधू, ब्राह्मण, वैष्णव, तीर्थ, समुद्र और व्रत यम नियमादिकों की निन्दा करता है वह अवश्य

नर्कगामी होता है। इनकी बात तो सर्वत्र माननीय है पर कम कहीं कहीं ही। इसलिये बुद्धिमान लोग दुख पड़ने पर भी यश ही मान करते है। भगद्विभूति रूप देवतागण इन दैत्यों को क्षण भर में ही जीत लेंगे।

सदालाभो जयस्तेषां येषां विष्णुः प्रसीदति ॥२१॥

जिस पर भगवान् कृपा करते हैं उसको सदैव लाभ एवं जय ही मिलती है। इस तरह अपने स्वामी से डांट फटकार पाकर गन्धर्व लोग लज्जित होकर देवताओं की स्तुति करने लगे ॥१०-२२॥

इति–एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादश अध्याय

गंधर्वों से अपनी गर्हणा सुनकर वे मनस्वी देवतागण उस रणमण्डल में मंथरा के मार डालने का यत्न सोचते हुए इन्द्र से बोले कि लोग जैसे बकरी के बच्चे को रस्सी में बाँधकर भूमि में घसीटते हैं उसी तरह हमारे बाहनों को यह धूर्ता घसीट रही है इसलिए इस महापापिनी को शीघ्र ही बज्र से मार डालिये। इन्द्र ने कहा कि मैं देवराज होकर स्त्री का वध कैसे कर सकता हूं ॥१-४॥

सागस्सु खलु योषित्सु प्रहरन्ति न मानवाः।
किं पुनर्मद्विधाः पापं कुर्वते नहि त्वीदृशम् ॥५॥

मार डालने योग्य अपराध पर करने भी स्त्रियों को कोई मनुष्य नहीं मारते, तो फिर मुझ सरीखे सम्मान्य देवता ऐसा काम कैसे कर सकते हैं, अतः मुझसे ऐसा नहीं हो सकता। इस प्रकार इन्द्र की प्रतिज्ञा सुनकर देवता लोग विपत्ति के सहायक श्री नारायण की शरण जाकर मनसे भगवच्चरण चिन्तवन करने लगे एवं सामूहिक प्रार्थना करने लगे। महायोगी नारदजी ने भी बैकुन्ठ में जाकर विस्तार-पूर्वक मंथराकृत देवसंकट भगवान से निवेदन किया, जिसे सुनकर परम कारुणीक भगवान् शीघ्र ही नन्दक (तलवार), सुदर्शन (चक्र) कौमोदकी एवं शिखरी (गदा) बज्रद्रंष्ट्रा (कटार) और शार्ङ्ग (धनुष) यथास्थान बांधकर गरुड़ पर बैठे पांचजन्य शंख बजाते हुए पार्षदों सहित देवासुर संग्राम-भूमि को चले। उस समय पार्षद गण भगवान् पर श्वेत छत्र लगाये हैं एवं दोनों बगल से चँवर

डुला रहे हैं और गरुड़ के पखनों से साम स्वर में वैदिक स्तोत्र निकल रहे हैं। इस तरह भक्तरक्षक विश्वात्मा भगवान् समरांगण में देवताओं के शरण होते ही तुरन्त ही पहुँच गये ॥५-१४॥ भगवान् को आते देखकर मृतक के जी उठने के समान देवता परम हर्षित हुये और मन से भगवान् की माधुरी का सब इन्द्रियों द्वारा आस्वादन करने लगे। उत्फुल्ल कमल नैन भगवान् सान्द्र घन विग्रह पर-कोटि विद्युत् निभ वस्त्र पहिने वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि धारण किये हैं जिस कौस्तुभ में अपना प्रतिबिम्ब देखकर कभी-कभी लक्ष्मी को दूसरी सुन्दरी का भ्रम हो जाया करता है। सर्वाभरणों से भूषित चतुर्बाहू रूपी शाखों से सुशोभित कल्पवृक्ष के भी कल्पवृक्ष के समान होते हुए भी दैत्यांगनाओं के सिन्दूरादि समस्त सौभाग्य चिह्नों को सर्वथा नष्ट कर देने वाले प्रभु की समस्त दिव्या युध मूर्तिमान होकर स्तुति तो करते ही हैं, गरुड़जी भी अनन्त-नाग के विरोध को त्याग-कर अन्जलिबद्ध हो स्तुति करते ही रहते हैं। कृपावारिनाथ श्रीहरि की स्तुति इन्द्रादि देवगण करने लगे ॥१५-२३॥ हे प्रभो ! आप अपनी चित् शक्ति से समस्त ब्रह्माण्ड की रचना, रक्षा और हरण करते हैं। आप अपनी रचनात्मक कला से रजोगुणी ब्रह्मा में प्रवेश करके सृष्टि की रचना करते हैं, अपने पराभिभव तेज को तम के अधिष्ठाता देवता शंकर में प्रवेश कराकर संहार कराया करते हैं और अपने शुद्ध सत्वांशमय विष्णु विश्व पालन करते हुए त्रिविध आकार से भासित होते हैं। जैसे विभिन्न रंगों के संयोग से कांच रंगीन मालूम पड़ता है अथवा एक ही मेघ का जल रसों के संयोग से भिन्न-भिन्न ज्ञात होता है वही हाल आपका है। भक्त गण सर्व व्यापक अजित आप को भी जीत से लेते हैं। आप अव्यक्त को ही समस्त व्यक्त पदार्थों का कारण वेद कहता है। आप्त-काम, परम दयालु एवं सच्चिदानन्द रूप अन्तर्यामी आपको मूढ़ लोग नहीं जानते। सर्वापेक्षा पुराने होते हुए भी आप नित्य किशोर हैं पर दुर्जन लोग नहीं जान सकते। स्वयम्भू अथच अनीश आप सर्वकारण एवं सर्वेश हैं। चतुर्भुज एवं आप चतुर्वर्गप्रद तो हैं ही। चतुर्मुख (ब्रह्मा) चतुर्वर्ण एवं चतुर्युगों के कर्त्ता भी आप ही हैं। साम आदि वेद निरन्तर आपका गान करते हुए बतलाते हैं कि पंचभूतों, सप्तावरणों एवं चौदहों भुवनों में आप एक रस विराजमान रहते हैं। एकाग्रमन करके योगी लोग आप ही की उपासना करते हैं। अजन्मा होकर आप

अनेक जन्म लेते हैं और निरीह (कामनारहित) होकर भी आप भक्त द्रोहियों का नाश करते रहते हैं। आप योग निद्रा से आंख बन्द किये हुए भी जागते रहते हैं। जीवों के आत्म कल्याण के लिए आपने अनेक वैदिक मार्गों का प्रचार किया है। गंगा आदि नदियाँ जैसे समुद्र में जातीं हैं उसी तरह सभी भक्त आपकी ही उपासना करते हैं, उन भक्तों की गति, गुरुयुक्ति प्रदाता आप ही है। जैसे पंच-महाभूत सबमें रहते हुए अलग भी हैं वैसे आप भी सबमें हैं और सबसे अलग भी हैं। आपका नाम पाप के किले को ढहाकर भयंकर पापी को भी पवित्र कर देता है; तब भला सतत स्मरण, दर्शन, अर्थात् चरण बन्दन सेवा आदि का महामहत्व कौन जान सकता है। जैसे समुद्र में अनन्त रत्न हैं, अग्नि में अनन्त तेजोमय विस्फुलिंग हैं इसी तरह आपके अनन्तानन्त दिव्य चरित्र हैं। भक्तों पर अपार अनुग्रह करके आप अनेक प्रकार से जन्म लेकर अनेक प्रकार की लीलायें करते हैं। निरन्तर गान करती हुई भी श्रुतियां आपका पार नहीं पातीं हैं तब भला अन्य कोई कैसे यथार्थ स्तुति कर सकता है ॥२४-४२॥ इस प्रकार स्तुति करके देवता गण ने प्रार्थना की कि इस मंथरारूपी विपत्ति से हमें पार कीजिये। देवताओं की विपत्ति सुन एवं देखकर श्री हरि ने कहा कि मुझ नायक के होते हुए मंथरा एवं दैत्यगण तुम्हारा क्या कर सकते हैं, अभी यत्न करके सबको भगा देता हूँ। तुम्हारे किए गए इस मेरे स्तोत्र का जो कोई मनुष्य पाठ करेगा उसके समस्त पाप क्षय हो जायंगे वह सभी तीर्थों का फल पायेगा। यहाँ तक कि इस स्तोत्र को सुनने वाला भी परम गति प्राप्त करेगा ॥४३-४६॥

इति—द्वादशोऽध्यायः १२

त्रयोदश अध्याय

श्री भगवान ने कहा कि समस्त देवतागण तथा इन्द्र मेरी आज्ञा मानकर मंथरा को मार डालने के लिये शीघ्र ही युद्ध करो ॥१॥

स्त्री वाऽथ पुरुषो वापि षंढा वापि नराधमः।
नतेषां हनने पापं युद्धे तु समुपस्थिते ॥२॥

स्त्री हो, पुरुष हो, नपुंसक हो अथवा कोई भी नराधम अर्थात् अधर्म से युद्ध करते सामने आये उस पापी को मार डालने में दोष नहीं है। इसलिये हे इन्द्र युद्ध में मंथरा को मारने जाओ। इस प्रकार श्री हरि की आज्ञा पाकर देवतागण रणभूमि में जाकर दैत्यों से लड़ने लगे। तब मंथरा ने इन्द्र को मारने का बहुत उपाय किया। इन्द्र ने कहा रे पापिनी ! वैर करके कहाँ जायगी और उसके सिर पर हजार धार वाला बज्र मारा। बज्र लगने से उसका मस्तक घूमने लगा और बड़े जोर से रोती हुई चक्कर खाकर भूमि पर गिर कर लोटने लगी, जिससे वहाँ की पृथ्वी काँपने लगी। उड़ते हुये दक्षिगण डर से गिर गये, दैत्यगण युद्ध छोड़कर प्राण ले ले कर भागे ॥२-१०॥

पतितान्यतमानीश्च पश्यन्तिस्म न कातराः ॥११॥

कायर लोग दूसरों को रण में गिरा हुआ देखकर धैर्य नहीं रख सकते। श्री हरि की समीपता से देवताओं की विजय और दैत्यों की पराजय हुई। इसमें श्रीहरि के पक्षपातित्व की शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि श्रीहरि में विषमता नहीं है वे तो कल्पवृक्ष के समान हैं—

नहि विषमता तस्य कल्पवृक्ष समो हरिः ॥१४॥

मंथरा को मूर्छित देखकर इन्द्र ने भगवच्चरणों में जाकर प्रणाम किया और भगवान से प्रार्थना किया कि आप अपने स्थान को जाइये। इसी तरह सदैव देव रक्षण किया कीजिये ॥१२–१७॥

एवमस्तु कहकर भगवान् बैकुण्ठ चले गये और देवता लोग विजय दुंदुभी बजाते हुए अपने-अपने स्थान गये। मैदान खाली देखकर जब दैत्यगण पुनः मंथरा के पास गये तब तक मंथरा होश में आ चुकी थी, दैत्यों से बोली कि तुम सबने देवताओं की धूर्तता देखा, मुझ स्त्री को मूर्च्छित करके भाग गये, जल्दी मुझे पालकी पर बैठाकर घर ले चलो। मेरा सिर फूट गया है गरदन टूट गई है और कमर के टूटने से पीठ पर कूबर निकल आया है, दैत्य लोग पालकी पर लादकर उसे घर ले गये। उसकी दशा देखकर स्त्री पुरुष सभी रोने लगे ॥१८—२७॥ इति त्रयोदशो अध्यायः ॥१३॥

चतुर्दश अध्याय

घर पहुँचने पर दैत्य पत्नियों को देखकर मथरा अपनी छाती पीटती हुई रोकर बोली कि तुम्हारे पतियों के लिये इन्द्र के बज्र से घायल होने से मेरी यह दशा हुई। ऐसा सुनकर किसी दैत्यपत्नी ने कहा कि तुम्हें बकवाद करते लाज नहीं लगती जो स्त्री होकर पुरुषों के बीच में लड़ने गई थी अरे स्त्रियों का बल तो केवल रंगमहल में पति के साथ भोग विलास में ही चलता है ॥१–५॥

दूसरी दैत्यांगना ने कहा कि सखियों ! यह तो समरभूमि में विलासी देवताओं को अपना मुख दिखाने गई थी जिससे कोई कामुक देवता मोहित होकर वरण करे। तीसरी ने कहा कि यह शस्त्रास्त्र प्रहार के बहाने हाथ ऊपर को उठाकर शैल-शिखर वत् अपना उत्तुंग स्तन देवताओं को दिखाने गई थी। चौथी ने कहा कि महात्मा इन्द्र ने गलती की जो इसकी नाक कान नहीं काट ली। पाँचवीं ने कहा ठीक है युद्ध क्षेत्र में स्त्रियों से हारने में हँसी हो और जीतने पर कोई यश भी नहीं इससे इन्द्र ने ठीक ही किया। छठवीं ने कहा कि अब पुनः जाइये अबकी बार अवश्य देवताओं को जीत लोगी ॥६—१०॥

दैत्यागनाओं के हास्य विनोद सुनकर अपना सिर पीटते हुये मंथरा कहने लगी कि मैं अपना पाप क्या कहूँ कि परोपकार के लिये दुख भी सहा और अब व्यंग भी सहती हूँ। मुझ स्त्री पर प्रहार करने में पापी इन्द्र का अधिक दोष नहीं है। सारा दोष उस विष्णु का ही है। उसी ने मुझे इन्द्र से मरवाया है। विष्णु परमस्वतन्त्र है, धर्म धर्म चिल्लाता है पर धर्म करता नहीं। कहता तो है कि स्त्री पर प्रहार नहीं करना चाहिए पर स्वयं भृगु पत्नी का बध किया। मैंने वेदों एवं पुराणों में सुना है कि भविष्य में भी यह ताड़का तथा पूतना को मारेगा। वह बड़ा मायावी है। कहता तो है कि पर स्त्री गमन नहीं करना चाहिए पर स्वयं जलंधर वध के लिए वृन्दा का सतीत्व नष्ट किया। दूसरों को कहता है सब दया करो और स्वयं प्रलय करता है। वह विष्णु सदा से निरर्थक काम करता है जैसे बैल की पीठ पर जीभ, बकरी के कण्ठ में स्तन ऊँट की पीठ पर कूबर और पुरुषों के वृषण बनाने से क्या अर्थ निकला अर्थात् यह सब रचना व्यर्थ ही तो है ॥११-२०॥

जिह्वा वृषभ पृष्ठे च ह्यजा कण्ठे तथास्तनौ।
कूवरं चोष्ट्र पृष्ठे च पुंसोह्यण्डं न सार्थकम् ॥२०॥

विष्णु ही नहीं अपितु उसके भक्त लोग भी ऐसे ही निन्द्य कर्म करते हैं बड़े भक्त कहाने वाले प्रह्लाद ने अपने बाप को इसी विष्णु से मरवा डाला। ध्रुव ने तो तप करके इसे प्रसन्न करके पहले छल करके यक्षों से अपने भाई को मरवाया पुनः उन्हीं निरपराध यक्षों का नाश किया। कहाँ तक कहूँ यदि मैं जीती रही तो विष्णु से बदला लूँगी और मर भी गई तो पुनः जन्म लेकर विष्णु को खूब सताऊंगी। ठीक है अब मर कर ही बदला लूंगी इस टूटी रीढ़ से जीने मे तो कष्ट ही है और कूबर से तो किसी भी स्त्री या पुरुष की शोभा नहीं है ॥२१-२६॥

कूब्रेण न शोभाऽस्ति युवत्याः पुरुषस्यवा ॥२७॥

लोमश ने बताया कि ऐसा सोचते-सोचते वह मंथरा मर गई और केकय देश में किसी प्रधान राजकर्मचारी (मंत्री या सेनापति आदि सामन्त) के घर जन्म लिया और कैकेयी की समवयस्का होने से परस्पर में बड़ी प्रीति थी। त्रिवक्रा होने से कोई पुरुष इसे बरने को तैयार नहीं हुआ, इसीलिये कैकेयी के साथ अयोध्या चली आयी। जाति स्मरा होने के कारण बहुत काल बीत जाने पर भी इसको नारायण से वैर करना भूला नहीं। देवताओं की विशेष प्रार्थना पर साक्षात् परमात्मा ने ही अपना चार रूप बनाकर रावण वध द्वारा पृथ्वी का भार उतारने दशरथ के घर अवतार लिया है। श्रीराम श्री सीता सहित चित्रकूटादि पर्वतों दण्डकादि दाक्षिणत्य वनों को पवित्र करते हुये रावण को मार कर सुखपूर्वक आ जावेंगे। आप लोग शोक न करें ॥२८-३३॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पंचदश अध्याय

अयोध्या वासियों ने श्री लोमश जी से पूछा कि ऐसी महापापिनी मंथरा का वास श्री अयोध्या जी में किस पुण्य से मिला। तब लोमश जी ने बतलाया कि—

हेतुर्मनोहिसर्वेषां नराणाँ मुक्तिबन्धने ॥२॥

मनुष्यों की मुक्ति और (माया) बन्धन का कारण मन ही है। वज्र की चोट से पीड़ित मंथरा ने मरते समय क्रोध से मन में परम सुन्दर भगवान् श्रीमन्नारायण का ध्यान स्मरण शत्रुभाव से करते-करते प्राण त्याग दिया था। उसी भगवत्स्मरण के प्रभाव से इसे इस जन्म में श्री अयोध्यावास प्राप्त हुआ है ॥२, ३॥

नरोहि मनसा यद्यद् ध्यायन्संत्यजते तनुम् ।
तत्तदाप्नोति वैलोके मनसा ध्यातमेव च ॥४॥

मनुष्य जिस जिस का मन से चिन्तवन करते हुये शरीर छोड़ता है, जन्मान्तर में उस उसको प्राप्त करता है। महाभागवतबलि के यहाँ निन्य वेद की कथा हुआ करती थी अनेक बार वेद की कथा में मंथरा ने सुना था कि देव कार्य के लिये स्वयं परब्रह्म का अवतार अयोध्या में होगा*। 'जनमनमोहन प्रभु अपने दिव्य राम रूप से जब भू अयोध्या में आवेंगे तब मैं अयोध्या में रहते हुए उन्हें कष्ट भोगने के लिए वन में निकलवा दूँगी।'' इस प्रकार चिन्तवन करती हुई उस दुष्टा ने वह दैत्य शरीर छोड़ा, उसी स्मरण के प्रभाव से उसे अयोध्याजी का बास प्रात हुआ ॥५-७॥

अयोध्येयं महापुण्या विष्णोश्च नगरी शुभा ।
यत्र वासाद्धि सर्वेषां विष्णु लोके भवेन्नृणाम् ॥८॥

यह महापुण्या श्री अयोध्यापुरी भगवान् की प्रियपुरी है, यहाँ बसने से भगवल्लोक की प्राप्ति अनायास हो जाती है। अतः मंथरा भी निःसन्देह भगवल्लोक ही जायेगी क्योंकि एक अयोध्या बास करती ही है दूसरे द्वेष भाव से ही सही सदैव श्री रामभद्र जी का मुखकमल तो देखा करती है ॥८-१०॥

द्वेषात्कामाद्भयाल्लोभाद्रामे चित्तं यथा विशेत् ।
तथैव करणीयंहि नराणां मुक्तिमिच्छताम् ॥११॥

---

* अनुवादक की लिखी हुई "वेदो मे रामकथा" नामक प्रकाशित पुस्तक में प्रायः ये सभी वेद मंत्र पूरे पते के साथ सरल हिन्दी टीका युक्त संग्रहीत है।

मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि द्वेष, काम, भय, लोभ आदि से चाहे जैसे बन सके श्रीराम में मन लगाये रहें। जिसका चित्त किसी भी तरह श्रीरामजी में लग जाता है उसकी मुक्ति अवश्य हो जाती है। तप, दान, यज्ञदीक्षा और जात कर्म से लेकर अन्त्येष्ठि तक के संस्कार आदिक अनेक कर्म जालों से श्रीरामजी उतने प्रसन्न नहीं होते जितने कि भक्ति से, क्योंकि यदि दानादिक सभी कर्म करे पर श्रीरामजी में चित्त स्थिर न हो तो उन दानादि पुण्यों से स्वर्गवास और पुण्यान्त पर अधः पतन अवश्य होता है ॥११–१४॥

यदि भाग्याद्धि साधूनां संगतिर्जायते क्षितौ।
तदा रामस्य भक्तौ च नराणां जायते मनः॥
विना भक्त्या न मुक्तिश्च नराणामण्डगोलके ॥१५॥
लोके भक्तु चाश्चर्य जलाज्जन्म धृतस्य च।
सिकतायाश्च तैलंतु यत्ने यातिकथंचन ॥१६॥
विना भक्ति न मुक्तिश्च भुजमुत्थायचोच्यते।

यदि भाग्य से पृथ्वी पर सच्चे साधु का सत्संग मिल जावे तब तो मनुष्य का मन श्रीरामभक्ति में लग सकता है। समस्त ब्रह्माण्ड में कोई कहीं रहे पर बिना भक्ति के मुक्ति तो मिल ही नहीं सकती। लोक में चाहे परम आश्चर्य मय ऐसी अनहोनी बात हो जाय कि पानी मथने से घी और यत्न करने से बालू से तेल भी किसी तरह निकल जाये परन्तु बिना भगवद्भक्ति के मोक्ष नहीं मिल सकता यह मैं (लोमश) भुजा उठाकर (शपथपूर्वक) कहता हूँ। आप लोग महाभाग्यशाली, धन्य (कृतार्थ) हैं कि आप लोगों का प्रेम श्रीराघवेन्द्र रामभद्र में है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि जैसे आप यहाँ भूबैकुण्ठ में वास करते हैं वैसे ही त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ नित्य अथच दिव्य अयोध्या में आप लोगों का अखण्ड वास होगा ॥१५–१८॥

अयोध्या वासिनः सर्वं जगन्नाथस्य मूर्तयः।
त्र्यम्बकेन पुरा प्रोक्तं पार्वत्यै तत्र चैकदा ॥१९॥
अयोध्या याश्चमाहात्म्यं वक्तु शक्तो न चाब्जजः।

एक बार कैलाश में शिव जी ने पार्वती जी से कहा था कि श्री अयोध्या-वासी प्राणी भगवत् स्वरूप भगवान् के विग्रह ही हैं। अयोध्याजी का माहात्म्य ब्रह्माजी भी नहीं कह सकते तब भला अन्य अविश्वासियों की क्या क्षमित है ॥१९, २०॥

यत्र नारायणः साक्षाच्चतुर्धा व्यस्यस्वांतनुम् ॥२१॥

जिस अयोध्या में साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा अपने को चार रूप में विभक्त करके नित्य क्रीड़ा करते रहते हैं उस अयोध्या का गुण कौन कह सकता है। इस प्रकार संक्षेप में मंथरा चरित्र मैंने कहा। सूत उवाच—इतना कहकर श्रीराम दर्शन-लोभी ब्रह्मर्षि, लोमश जी चले गये। लोमश जी के प्रवचन से अयोध्या-वासियों का समस्त सन्देह दूर हो गया। हे शौनक! इस पृथ्वी पर सभी अयोध्यावासी परम धन्य हैं ॥२१, २२॥ इति पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

शौनकजी ने कहा कि हे रसिकेन्द्र सूतजी आपका चित्त तो सदैव श्री राम-पद कमल का भृंग बना उस का प्रेम रस पिया करता है। भक्त संजीविनी श्रीराम भद्रजी की लीला कहिये जिसके सुनने से ही इष्ट पूर्ति आदि समस्त कर्मों का फल हो जाता है ॥१, २॥ सूत जी ने कहा हे महर्षे द्वापरारम्भ में श्री शक्ति पुत्र पाराशरजी ने श्री व्यास जी से कहा था और श्री व्यास जी से मैंने प्राप्त किया। ब्रह्मा के पुत्र एवं शिष्य बशिष्ठ, बशिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति पुत्र तथा वशिष्ठ के शिष्टा पाराशर, पाराशर के पुत्र एवं शिष्य व्यास और व्यास का शिष्य मैं हूँ इसे तो आप जानते ही है। अस्तु एकबार राजा दशरथ जी अपने समस्त राज चिन्ह से अलंकृत घर की सभा में (महल के प्रांगण में) बैठे थे और श्रीराम जी राजा की गोद में थे ॥३-१०॥ उस महल के प्रांगण में कल्प वृक्ष शोभित था उस कल्प बृक्ष के मूल में अष्टकोण वाले कमलाकृति सिंहासन पर बैठे हुये महाराज़ दशरथजी सर्वांग सुन्दर सर्व भूषण वस्त्रालंकृत श्रीरामजी को गोद में लिये दुलार कर रहे थे। वह दिन ब्रतों में सर्वं श्रेष्ठ ब्रत एकादशी का दिन था। देवतागण चारों युगों में एकादशी को सरयू स्नान करने आते ही हैं,

उस दिन भी इन्द्रादि समस्त देवगण एकादशी का स्नान सरजू में करने अयोध्या जी पहुँचे ॥११-२८॥

॥इति षोड़षोध्यायः ॥

सत्रहवां अध्याय

सूतजी ने कहा—हे महामुनि, देवता ऋषि पिता सभी लोग अयोध्या जी नहाने पहुँचे। एक हजार घोड़े एवं पताकों के स्वर्ण रथ पर बैठ कर इन्द्र आये। उस रथ पर बालकों के खेलने की अनेक सामग्री स्वर्ण के मणि जटित पशु पक्षियों के अतिरिक्त और भी अनेक क्रीड़ा सामान थे। विकट एवं बहुरंगी तरंगी भूत प्रेत वाणों से आवृत्त शिवा सहित नंदी पर बैठकर शिवजी आये। उनकी जटा में मालती की शुभ माला के समान गंगा जी शोभित थीं। अपने श्वेत हंसराज पर बैठकर ब्रह्माजी आये। इन्द्र के एरावत के समान पर्वताकार मूषक पर बैठकर बड़ी भारी तोंद वाले एक दन्त गजाननजी आये ॥१-११॥

परम वैष्णव होते हुए भी गणेश जी दुष्ट एवं विघ्न दमनार्थ परशु (फरसा) लिये थे। चूहे पर गणेशजी ऐसे लगते थे जैसे ऐरावत पर देवराज इन्द्र हों। उस समय अनेक बाजे बजाते एवं गाते हुये गन्धर्वों एवं अपसराओं से लोक पालों के दिव्य विमान बड़ी शोभा पा रहे थे। केवल स्वर्ग लोक के निवासी ही नहीं अपितु भुवर्लोक से लेकर सत्यलोक तथा ध्रुव लोक तक के प्रधान-प्रधान ऋषि एवं देवतागण आये थे ॥१३-२२॥

यद्यपि सूर्य भी प्रसन्नता के कारण ऋतु के अनुसार पूर्ण रूप से तप कर रहे थे परन्तु आकाश गंगा के शीतल प्रभाव एवं कल्प वृक्ष पारिजात मंदार आदि की पुष्प गंध युक्त-सुगंधित वायु के कारण किसी को ताप कष्ट नहीं हो रहा था। कभी देव वाहन मेघों में अदृश्य हो जाते कभी देवयानों के वेग के सामने मेघों का वेग मंद पड़ जाता था। अपने-अपने वाहनों पर बैठे-बैठे देवतागण बहुत ऊपर से पृथ्वी मण्डल के सप्त दीप सभी समुद्र एवं सभी पर्वत तथा ग्रामादि को देख-देखकर प्रसन्न होने लगे। जम्बूद्वीप के आठों खण्ड देखने के बाद जब अजनाभ वर्ष (भरतखण्ड) को देखा तो सभी देवता हाथ जोड़ कर प्रणाम करने लगे

२३—३१।। देवराज इन्द्र को भी प्रणाम करते देखकर पुलोमनंदिनी शची (इन्द्राणी) ने अपने हाथ का कमल नचाते घुमाते हुए हास्य करके इन्द्र से पूछा कि आप तो त्रिलोकेश हैं। सभी देवता आपको प्रणाम करते हैं तब आपने किस देवता या तीर्थ को प्रणाम किया ? इन्द्र ने कहा—देवि ! यह कर्म भूमि भरत खण्ड है यहीं सौ यज्ञ करके मैं देवराज हूँ। तुमने भी यहाँ अनेक पुण्य कर्म किये थे जिससे कि आज त्रिलोकाधीश्वरी बनी हो। इसी भारत खण्ड की भूमि पर शुभ कर्म करके हमारा स्वर्ग तो तुच्छ है मनुष्य परमधाम महा-बैकुण्ठ तक पा जाते हैं। ३२—३८।।

यह देखो समुद्र किनारे पर परम पवित्र क्षेत्र मुक्ति पुरी श्री जगन्नाथ धाम है। यह विश्वनाथ जी की काशी है. यह पितृ उद्धारक गया क्षेत्र है, यह भगवच्चरण नख से निकली गंगा, सूर्यतनया यमुना और सरस्वती तीनों पुण्य नदियों का संगम प्रयाग क्षेत्र है। यह सुन्दर शिखरों से शोभित परम रमणीक पवित्रतम गिरिवर श्री चित्रकूट है। यह महेन्द्र गिरि और दर्दुर गिरि तो मानो भू देवी का नितम्ब है। यह मलय और सह्य पर्वत तो मानो पृथ्वी के कुच ही हैं यह देखो भबवान वेंकटेश का निवास स्थान शेषाचल यहाँ भगवान वेंकटेश को प्रणाम करो। यह देखो हरिद्वार मथुरा वृन्दावन यह देखो जनकपुर यह देखो कमला रूपी कमला नदी। यह देखो शिव और विष्णु से युद्ध होते-होते जहाँ रुक गया वह हरिहर क्षेत्र यह देखो अयोध्यापुरी। प्रिये ! शिर से प्रणाम करो। यहाँ साक्षात् परमात्मा इस समय चार नर बालक बनकर क्रीड़ा कर रहे हैं। इन्द्र की बातें सुनकर शची देवी ने हाथ जोड़कर मस्तक को खूब झुकाकर प्रणाम किया। इन्द्राणी को प्रणाम करते देखकर सभी गंधर्व अप्सरायें एवं देवताओं ने उसी तरह हाथ जोड़कर शिर झुकाकर श्री अयोध्यापुरी को प्रणाम किया ।।३९-४८ ।। ।।इति सप्तदशोऽध्यायः ।।

अठारहवाँ अध्याय

सूत जी ने कहा कि शची को प्रणाम करती देख कर पति प्रिय सावित्री देवी ने अपने पति ब्रह्मा का हाथ पकड़कर पूछा कि इन्द्राणी आदि सभी प्रमुख

देवस्त्रियाँ किसे प्रणाम कर रही हैं और हम लोग किस क्षेत्र में आ गये। यह सुनकर ब्रह्मा ने पहिले तो अयोध्या नगर को प्रणाम किया फिर कहने लगे कि यह भगवान विष्णु की आद्यापुरी अयोध्यापुरी है यहाँ साक्षात् परमात्मा ने नराकार रूप में जन्म लिया है। इक्ष्वाकु वंश श्रेष्ठ अवधनरेश दशरथ धन्य हैं कि स्वयं हरि जिनके पुत्र होकर जन्मे हैं। हम लोग अपने करोड़ों जन्मों के पुण्य फल से दिव्य नदी सरयू किनारे अयोध्या में बसने की कांक्षा करते हैं। जिस ब्रह्मद्रव सूर्य के दर्शन से समस्त पाप राशि नष्ट हो जाती है उस सूर्य की तुलना तो कहीं है ही नहीं ॥१-७॥ श्री हरि के चरणतल से उत्पन्न होकर भागीरथी गंगा पृथ्वी पर आई हैं। उन गंगाजी में स्नानार्थ जाने वालों को पग पग-पर दुर्लभ अश्वमेघ का फल प्राप्त होता है। जब किसी शास्त्र ने गंगा की महिमा कह कर पार नहीं पाया तब भला सरयू की महिमा कौन कह सकता है। जिसमें साक्षात् नारायण—श्रीरामजी नित्य स्नान क्रीड़ा करते हैं। तब कौन स्थूल दृष्टि वाला शास्त्रज्ञ सरयू जी का पार पा सकता है। अपनी असमर्थता के कारण ऋषियों ने पुराणों में यमुना और सरयू का महात्म्य विस्तार से नहीं कहा, जहाँकि श्रीकृष्ण और श्रीराम नित्य दिव्य क्रीड़ा करते रहते हैं हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में श्री अयोध्या और वृन्द्रावन भूबैकुण्ठ हैं। ॥८—१४॥

यह अयोध्यापुरी सर्वथा एवं सर्वदा सबसे अजेय है। हे महाभागे सावित्रि! वह देखो अयोध्या के मकानों के शिखर कैसे ऊँचे हैं मानो वे अपनी भुजाओं से आकाशचारी विमानों को पकड़ लेना चाहते हैं। बड़े-बड़े मकानों के ऊपर बैठे नर नारी दूर से ऐसे लगते हैं मानो वर्षा का तमाशा देखने के लिए मेघों का छाता लगाए हों, घरों के ऊपर जो स्वर्णदण्ड मण्डित पताकायें फहरा रही हैं उनके दण्ड ही मानों मेघरूपी छाता के डण्डे है ध्वजा पताकाओं के वस्त्र के कारण किसी अयोध्या वासी को कभी भी सूर्य के प्रचण्ड आतप का पता ही नहीं चलता। इन उच्च घरों के शिखरों पर रुककर मेघगण कभी-कभी विश्राम लिया करते हैं जबकि वर्षा ऋतु में महान् जलभार से थक जाते हैं। इन प्रासादों पर स्थित युवतियों के मुख मण्डल ऐसे जान पड़ते हैं मानो दिन रात हजारों चन्द्रमा अयोध्या के घरों पर विराजमान रहते हैं। देखो दीप की शिखा से उठे धूम

समूह से मानो आकाश धूमिल हो गया है ।।१५—२०।। सोने के धूलिकण पाँव से ठोकर लग जाने पर भी किसी राही पर उड़कर नहीं पड़ते । मार्ग में हजारों बच्चे स्वर्ण धूलि में खेलते हैं । चतुरंगिणी सेना सदैव नगर की रक्षा में चारों तरफ सुसज्जित रहती है । उधर देखो पीलवानों ने जिन हाथियों को सरयू में लाकर खड़ा किया है वे गजेन्द्र सब कमलों को सूंड़ में लेकर हथिनियों एवं अपने बच्चों के साथ खेलते हुए कितने सुन्दर लग रहे हैं । सरयू के किनारे स्वर्ण पत्र से छाये गये स्नानार्थियों के लिए बने विश्राम मण्डप समस्त दिशाओं को मानो भूरे रंग की बना रहे हैं । बाहर स आये हुये लोग बिना प्यास के भी बार-बार सरयू जल पीते हैं । स्नान करती हुई नागरिक युवतियों के अंग से छूटे हुए अनुलेपके कुंकुम से सरयू की धार भूरे रंग की जान पड़ने लगती है । इस देश के समस्त राजा लोग बहुत दिनों से रघुवंशी महाराजाओं की आज्ञा में रहते आए हैं । अयोध्या की प्रत्येक रचना से शिल्पियों-कारीगरों की निपुणता प्रगट होती है ।।२१—२६।। अयोध्या में सरयू किनारे बनी हुई सीढ़ियों की शोभा ऐसी लगती है मानो यह मूर्तिमान स्वर्ग है । जैसे राजाओं की सुन्दरी युवती रानियों के कण्ठ में सोने का कण्ठा एवं माला शोभित होते हैं इसी तरह अयोध्या के चारों ओर सरयू की स्वर्ण सीढ़ियों की शोभा है । लहर रूपी मुक्तादाम से शोभित इन घाटों की रचना बहुत श्रेष्ठ कारीगरों ने की है । खिली हुई पद्मिनी के फूलों के जाल से मानो सरयू ने अयोध्या को बाँध लिया है । [अयोध्या के तीन ओर सरयू प्रवाहित है और दक्षिण ओर गणेशकुंड, मणिकुंड, दशरथकुंड, दुर्भरसर आदि कई बड़े-बड़े तालाब हैं जिनमें सदैव कमल खिले रहते हैं ।] यह सरयू इक्ष्वाकु वंशियों की परम मङ्गलमयी धात्री (गोद में खिलाने वाली दाई) है । सेवार इस धात्री के केश हैं । खिले हुए कमल नेत्र और मुख हैं, पुरइने ही साड़ी है, बड़ी-बड़ी लहर भुजायें हैं, कुमुद के पास बैठे चक्रवाक के संलग्न जोड़े स्तन हैं और हँस तथा फेन हास हैं । यह सरयू दाई पुलिनरूपी गोद में बैठा कर सभी नर-नारियों को अपने अमृतमय दूध से सदैव पालन-पोषण करती रहतीं हैं

।।२७—३२।। इति अष्टादशोऽध्यायः।।

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा ने पुनः कहा कि देखो सरयू जी के किनारे सभी प्रकार के अनाजों का जो टाल लगा है वह नाव से व्यापार करने वालों का है और श्री अयोध्या के सराफा बाजार में अनेकों जाति की मणियों की इतनी प्रचुरता है कि उतनी तो लोक पालों के यहाँ भी नहीं हैं। राजा दशरथ का जय जयकार करते हुए लोग दुंदुभी भेरी आदि सैकड़ों बाजे बजाते रहते हैं। वर्षा काल में स्त्री, पुरुष, बालक आदि अपनी ऊँची अटारियों पर चढ़ कर सरयू जी के कल्लोल की बहार देखते हैं ॥१-८॥ ब्रह्मा यह कह ही रहे थे कि पूर्व चित्ति, तिलोत्तमा, मंजु घोषा, रम्भा और उर्वशी आदि अप्सरायें तथा गंधर्व, यक्ष और विद्याधरादि अयोध्या के स्त्री पुरुषों को देखते ही अपने सौंदर्य गर्व के चूर चूर हो जाने से लज्जित होकर सभी ब्रह्मा से बताने लगे कि—हे देव-देव ! इन अयोध्या की युवतियों को देखिए जिनके सुन्दर केश श्याम नेत्र, श्यामावस्था (षोड़शी) गौर वर्ण, ताम्बूल रंजित मुखारविन्द, स्वर्णसूत्रालंकृत नासामोती (लौंग, नथ, बुलाक आदि) धारण किए बहुमूल्य वस्त्राभरणों से शोभित ये सुन्दरियाँ अनेक-अनेक स्थिर विद्युत पुञ्ज के समान अटारियों पर शोभित हैं ॥९-१४॥ यहाँ के युवकगण तो हम लोगों देवताओं की कौन यौवन के देवता कामदेव से भी बढ़कर कान्तिमान हैं। इनके कानों में मणियों का कुण्डल, कंठ में विष्णु (कण्ठा) बाहु मूल में अगद, कलाई में बलय कटि में मेखला आदि सुशोभित हैं। बहुत कहाँ तक कहा जाय, ऐसा सौंदर्य तो स्वर्ग से लेकर सत्य (ब्रह्म) लोक तक कहीं भी नहीं दिखाई देता। बहुत प्रकार के जप, तप, यज्ञ, योग आदि कायक्लेशकर साधनों से जो हम लोगों के स्वर्ग में मिलता है उससे बढ़कर सुख भोग यहाँ के सभी स्त्री पुरुष कर रहे हैं. तब भला इन्हें स्वग से क्या प्रयोजन है ॥१५-२०॥ इस प्रकार ईर्षा पूर्ण उनकी बातें सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा ने कहा कि तुम लोग स्वायम्भुवमनु के पास जाकर पूछो वे तुम्हारे सन्देहों को दूर कर देंगे। इतने में स्वाम्भुवमनु ने भी विमान से आकर अपने पिता ब्रह्मा के चरणों में प्रणाम किया। तब सभी देवी-देवतागण मनु जी से पूंछने लगे कि आपने मानवीय प्रजा बनाते समय यह क्या किया कि हम लोगों से

अधिक सौंदर्यशाली एवं सुखैश्वर्य भोक्ता यहाँ के मनुष्यों को बनाया ? यदि आप ही स्वर्ग की मर्यादा न रखेंगे तो भला स्वर्ग के लिए कौन प्रयत्न करेगा ? अयोध्या के समान सौन्दर्यशाली एवं वैभवान्वित स्त्री पुरुष तो तीनों लोकों में कहीं हैं ही नहीं ।।२१–२६।। मनु ने समझाया कि स्वर्ग की इच्छा वाले स्वर्ग के लिए कर्म करते हैं । स्वर्ग तो स्वर्ग ही है और भूतल तो कैसी भी हो मृत्यु-लोक ही तो है । भूतल के लोग जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि ग्रस्त रहते हैं । मल मूत्र युक्त शरीरों का अल्पकाल में ही नाश हो जाता है, और स्वर्ग में तो तुम लोग पुरुष वर्ण पचीस वर्ष के युवक और स्त्रियाँ षोड़शी सब दिन बनी ही रहती हैं । स्वर्ग निवासियों की देह से न दुर्गन्धि निकले, न छाया हो, न वस्त्र मलीन हों और न स्वर्गियों को निमेष (पलक) लगे । अतः आप लोग मनुष्यों से सर्वथा श्रेष्ठ हैं, शोक न कीजिए । यह सुनकर हंसते हुए नारद जी ने कहा कि मानवेन्द्र की बात तो ठीक है परन्तु महात्म्य में अयोध्यापुरी सर्वथा श्रेष्ठ है, यह अयोध्या देवताओं को तो दुर्लभ ही है ।।२७–३४।।

स्वर्गवासात् पुनर्जन्म मरण विद्यते नृणाम् ।
स्वर्गाच्च्युताश्च भूलोके पतन्ति सुकृतक्षये ।।३५।।
अत्रमृताश्च बैकुण्ठमूर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः ।
कृमि कीट पतंगाश्ह म्लेच्छाः संकीर्णाजातयः ।।३६।।
कौमोदकी कराः सर्वे प्रयान्ति गरुड़ासनाः ।
लोकं सान्तानिकं नामदिव्य भोग समन्वितम् ।।३७।।
यद्गत्वा न पतन्त्यस्मिंल्लोके मृत्युमुखे नराः ।
माहात्म्यादधिकं स्वर्गात्साकेतं नगरं शुभम् ।।३८।।

पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत होकर प्राणी पुनः जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है । परन्तु कृमि, कीट, अतंग, पशु-पक्षी, गोमांस खादक वर्बर म्लेच्छ*

---

* बोधायन ने म्लेक्ष की परिभाषा यह बतलाई है :—

गो मांस खादकोयस्तु विरुद्ध बहुभाषते ।
सर्वाचार बिहीनश्च म्लेक्ष इत्यभिधीयते ।। (सं॰ श॰ कौ॰)

वर्णसंकर जातियाँ आदि सभी अयोध्या में मरने वाले रमा बैकुण्ठादि से भी ऊपर दिव्य भोगसमन्वित सान्तानिक (परा अयोध्या) में हाथ में कौमोदकी गदा लेकर (भगवत्पार्षद बनकर) गरुड़ पर चढ़कर त्रिपाद्विभूति में) जाते हैं। जहाँ से जाकर फिर कभी कोई प्राणी का मृत्यु मुख में पतन नहीं होता (अर्थात् अपनी इच्छा से वह चाहें जहाँ घूमें।) अतः यह साकेत नगर स्वर्ग से सर्वथा अधिक है ॥३५–३८॥

अयोध्या के समान भूतल, स्वर्ग समस्त ब्रह्माण्डों में भी कुछ नहीं है। विधाता ने संसार में बहुत स्त्रियों को बनाने के बाद जब सर्व सुन्दरी अहिल्या को बनाया तो सबने समझा और कहा कि यह घुणाक्षरी न्याय से हो गया, तो इस अपवाद के परिहार के लिए ब्रह्मा ने अहिल्या से भी अनन्तगुण सुन्दरी अनेकों स्त्रियाँ अयोध्या में बनाया और अब तो परम्परा ही बन गई। हे देवियो ! यहाँ के सौंदर्य पर संशय मत करो, क्योंकि यहाँ अयोध्या के सभी पुरुष श्रीहरि-नारायण के रूप और स्त्रियाँ श्री लक्ष्मी जी के ही रूप हैं ॥३९–४३॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

प्रत्येक उँजाली रात में लोग स्फटिक (संगमरमर) पत्थर के बने ऊंचे-ऊंचे मकानों पर चढ़कर राजमहल का तमाशा देखते हैं कि आकाश से पूर्ण चन्द्र की किरणें जब राजमहल पर पड़ती हैं तब राजमहल के शिखरों में जटित चन्द्रकांत मणियों से जल श्राव होने लगता है तो वह दृश्य बड़ा ही मनोरम होता है राजमहल की दीवालों पर बनी मानव आकृतियाँ चलते फिरते लोबशों के प्रतिबिम्ब पड़ने से सजीव सरीखी जान पड़ने लगती हैं। नगाड़ा एवं मृदंग की आवाज सुनकर मयूर कूकने और नाचने लगते हैं। दिन में महल के ऊपर से उड़ते हुए पक्षियों की छाया मणि-जटित आँगनों में पड़ती है तो उसे सच्चा पक्षी जानकर हिंसक अतएव पापी बिलार इधर-उधर दौड़ते हैं ॥१–६॥ नवयुवक दम्पत्ति की एकान्तवार्ता को शुक जब गुरुजनों के बीच में आवृत्ति करना चाहता है तो नवबधू चटपट उस कीर के मुख में विद्रुम का टुकड़ा दे देती हैं और उसके कारण दम्पत्तिवार्ता नहीं कह पाता। खाने की वस्तु जानकर

उसी में भूल जाता है। यहाँ के राजमार्ग सदैव अश्व, गज, रथ, गाड़ी आदि से भरे रहते हैं। सड़कों पर दोनों ओर लगे बड़े-बड़े वृक्ष कल्प-वृक्ष के समान दिखाई पड़ते हैं। यहाँ के शासक राजर्षि दशरथ जी अनेक अंशों में इन्द्र से भी श्रेष्ठ है और यह अयोध्यापुरी तो स्वर्ग से सर्वथा श्रेष्ठ है ही ॥१०–१८॥

जब देवताओं का विमान नगर के ऊपर आ गया तो वहाँ वनोपवनों को देखकर ब्रह्मा पुनः कहने लगे कि ओ देवगण! यहाँ के विचित्र उपवनों को देखो, इन वन के नाम सुनो। अशोकवन, संतानकवन, मन्दारवन, पारिजातवन, चन्दनवनों, चम्पकवन, (इस चम्पकवन में भौंरे नहीं जाते हैं।) रमणकवन, प्रमोदवन; रसाल (आम) वन, पनसवन, दीर्घकेसरों से उपशोभित कदम्बवन और दिव्य लताओं से परिवेष्टित तमालवन, ये बारहवन पुरोपवन हैं इसी तरह अनेक गृहोपवन भी अत्यन्त सुन्दर हैं ॥१९–२५॥ जैसे तुम लोग नन्दन चैत्ररथ आदि स्वर्गीय वनों में क्रीड़ा करते हो वैसे ही उन वनों में अयोध्या के सभी युवक युवती अपनी-अपनी मर्यादानुसार स्वच्छन्द विहार करते हैं। इस प्रकार बातचीत करते-करते देवताओं का विमान सरयू जी के किनारे उतरा। ब्रह्मा शिवादि सभी देवता एवं देवियों पहले श्री सरयू जल से अपने शरीर परिमार्जन किये। तब विधिवत स्नान करके वस्त्रालंकार धारणकर चन्दन लगाकर प्रथम गंगा पुत्रों (पण्डों) को दान दिया। तत्पश्चात् अन्य दानार्थियों को दान देकर उस पुण्यतिथि एकादशी के योग में जप करके महर्षियों से शोभित हुए ॥२६–२१॥ इति बिंशोऽध्याय २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

उसी समय बशिष्ठ जी ने जाकर अपने पिता ब्रह्मा जी के चरणों में प्रणाम किया। ब्रह्मा ने चरणों पर गिरे पुत्र बशिष्ठ को उठाकर हृदय से लगाया और राजा दशरथ का कुशलक्षेम पूछा। बशिष्ठ जी ने कहा कि जिसकी कुशल कामना आप करते हैं उसकी कुशलता तो सदैव रह ही सकती है। अभी पुत्रों के सहित राजा दशरथ भी आपका दर्शन करने आ रहे हैं। ब्रह्मा ने हँसते हुए कहा कि मैं भी देवताओं को लेकर स्वयं राजमहल को आ रहा हूँ अतः राजा को यहाँ आने से मना कर दो। जिसके पुत्र स्वयं रमानाथ श्रीमन्नारायण मेरे

उपास्यदेव ही चार रूप से साक्षात् विराजमान हैं, जिनकी नाभिकमल से मैं उत्पन्न हुआ और मुझसे तुम लोग महर्षि एवं दक्षादि प्रजापति उत्पन्न हुए। उन्हीं नराकार श्रीराम जी के सहायक बने हो। पर तुमको तथा इन देवताओं एवं ऋषियों को श्रीराम का ब्रह्मत्व छिपाना बहुत ही आवश्यक है जिससे राजा-रानी पुरजन-परिजन आदि प्रभु की बालक्रीड़ा का सुख प्राप्त करें ॥१-१२॥ पिता की आज्ञा पाकर बशिष्ठ जी ने लौटकर राजा से बताया कि आपके मित्र इन्द्र के अनुरोध से आपके राजकुमारों की रक्षा पढ़ने के लिये ब्रह्मादि मुख्य-मुख्य देवगण आ रहे हैं। अतः आपके पुत्र बड़े भाग्यशाली हैं। इतने में दूतों ने आकर कहा कि सैकड़ों देवता श्रीमहराज का दर्शन करने आना चाहते हैं, द्वार पर उपस्थित हैं जैसी आज्ञा हो। राजा ने कहा कि मेरा घर पुर राज्य देवताओं का ही है भला अपने घर मे भी किसी आज्ञा की प्रतीक्षा की जाती है ॥१३-१९॥ ऐसा कहकर राजा स्वयं रामजी को गोद में लिए हुये आगे बढ़े। तब तक ब्रह्मादि सभी देवता हँसते हुए महल में ही पहुँच गये। राजा ने ब्रह्मा को साष्टांग प्रणाम किया और ब्रह्मा के चरणों मे रामजी को लेटा दिया, ऐसे ही शंकर गणेश आदि को भी प्रणाम सत्कार करके सुन्दर सिंहासनों पर बैठाकर विधि पूर्वक पूजन किया और देवेन्द्र के साथ अंकमाल देकर दोनों मित्र मिले। नानावेषधारी गंधर्व, अप्सरायें, यक्ष, किन्नरादि उपस्थित होकर नाच-गान करने लगे ॥२०-२५॥ राजा ने प्रसन्नता पूर्वक ब्रह्मादि देवताओं से कहा कि आज मेरा जन्म, गृह सभी सुफल हो गया आज की रात्रि सुप्रभाता हुई जो मनुष्यों को दुर्लभ, बड़े भाग्य से देवताओं एवं साधुओं का दर्शन प्राप्त हुआ। तीर्थ स्नान के बहाने आकर मेरा इतना गौरव बढ़ाया कि मैं अपने मुख से उसे कहने में असमर्थ हूँ। तब हँसते हुये हंसवाहन ब्रह्मा कहने लगे ॥२६-३०॥

इत्येकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

बाइसवाँ अध्याय

ब्रह्मा ने कहा कि राजन्! आप सत्य कहते हैं तीनों लोकों में आपसे बढ़कर भाग्यशाली कोई नहीं है जिसके पुत्र श्रीराम भरत आदि हैं। (इन्होंने प्रति युग में साधु, ब्राह्मण, गाय और पृथ्वी की रक्षा किया है। इनमें जो भी

प्रीति करेगा उसके सभी काम सिद्ध होंगे। इनका चरित्र लोक में पापपर्वत को नष्ट करने के लिए बज्र है। जब तक सृष्टि रहेगी तब तक लोक में राम कथा का प्रचार रहेगा। बहुत कहाँ तक कहैं आपके पुत्र गुणों मे नारायण के समान ही हैं ॥१—६॥) ब्रह्मा के मुख से पुत्रों का गुण सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय तुम्बरू गन्धर्व के साथ देवर्षि नारद जी आ गये और पिता की गोद में श्री रामलला जी को देखकर उस श्याम सुन्दर रूप समुद्र में देर तक डूबे रहे पुनः बड़े धैर्य से मन को उस आनन्द समुद्र से बाहर निकाल कर स्तुति करने लगे ॥७—१०॥

मैं इन श्याम सुन्दर परम्ब्रह्म द्विभुज श्री रामजी की बन्दना करता हूँ जो कि देवदेवेश, योगेश्वर, योगबीज और योगियों के परम गुरु हैं। जो ज्ञानानन्द स्वरूप, ज्ञानगम्यसनातन, तपस्वियों की तपस्या का फल एवं सर्व सम्पत्ति देने वाले हैं। जो तपोबीज, तपोद्रव्य, तपवर, वरेण्य, वरद, स्तुत्य और भक्तानुग्राहक हैं। जिनको वेद नहीं जान सकता उन्हें हम कैसे जान सकते हैं। जो मुक्ति भुक्ति के कारण, नरक निवारक, आशुतोष, प्रसन्नवदन, करुणावरुणालय, ब्रह्म, ज्योतिस्वरूप, दुष्टदानवनाशक अपरिच्छिन्न शक्ति, मन क्रम वचन से परे और सत्व रजतम गुणों से परे हैं। जो ब्राह्मणों के इष्टदेव योगियों के हृदय धन, कोटि कंदर्पादिक सुन्दर, ज्योतिरूप, अरूप, रमानाथ, जगद्धितकारक, प्रभु, बासुदेव, जनार्दन, वैकुण्ठ, माधव, विष्णु, दैत्यारि, मधूसूदन आदि नामधारी हैं। इन हंस, शुद्ध, पवित्रों के पवित्रकारक, विश्वसेन, महत् एवं अमित तेज वाले श्रीराम जी को नमस्कार है। जो श्री राम जी मत्स्य, कूर्म बाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि दशमहावतार स्वरूपी हैं उन श्री राम जी के चरणों मे बारम्बार नमस्कार है। ॥११—२२॥

जब स्तव करके नारद जी चुप हो गये तब राजा दशरथ लज्जित होकर कहने लगे कि महर्षे! आपने तो मेरे पुत्र के बहाने से भगवान् की बहुत सुन्दर स्तुति किया। सभी को ऐसा ही करना चाहिए। इस समय कृपा करके मेरे पुत्र का रक्षा विधान कर दीजिये। विरक्त शिरोमणि नारद जी रक्षा के ब्याज से अपने हाथों से श्री राम जी के मस्तक से लेकर चरणों तक का स्पर्श किया

और आनन्दमग्न होकर शीघ्र ही वहाँ से चले गये। ॥२३—२७॥ ब्रह्मादि सभी नारद जी की प्रशंसा करने लगे कि रसिक शिरोमणि महा बुद्धिमान नारद जी श्रीराम चरणों का स्पर्श करके परम लाभ प्राप्त करके चले गये, धन्य हैं। सूत जी कहने लगे कि हे शौनक जी नारद कथित इस स्तोत्र रत्न का जो विद्वान् नित्य मनन पूर्वक पाठ करता है उसका मोह नष्ट हो जाता है और इस लोक में वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करके सुखी रहता है, जो इस स्तोत्र रत्न को एक मास मात्र नियम से सुनता है वह बालक श्रीराम जी की कृपा से निर्धन व्यक्ति धन मूर्ख बुद्धि और अविद्वान् गुरु के मुख से सुनते मात्र ही समस्त विद्यायें प्राप्त कर लेता है। अपुत्रक यदि एक वर्ष तक नित्य इस स्तोत्र को सुनै तो योग्य वंशधर पुत्र प्राप्त करता है। जो नित्य त्रिकाल इस स्तोत्र का श्रवण, मनन, पाठ करता है वह इस लोक में नाना सुखैश्वर्य भोगकर संसार में नाना प्रकार की सुकीर्ति करके भगवद्धाम को जाता है। और कहाँ तक कहैं इससे बढ़कर फलदायक स्तोत्र दुर्लभ है। ॥२८—२९॥

॥ इति द्वविंशोऽध्याय: २२ ॥

तेईसवां अध्याय

नारदजी के चले जाने पर परम धार्मिक राजा दशरथ ने हाथ जोड़कर कहा कि—हे देवगण ! आज एकादशी का फलाहार आप लोग यहीं करके हमें अनुगृहीत करें। देवता, ऋषि, द्विज जिस घर में नहीं खाते वह घर जम्बुक के घर के समान है। ब्रह्मा ने कहा राजन् ! एकादशी तो निर्जल रहना ही उत्तम है, फलाहार तो माध्यम है और अन्न का भोजन तो महा निन्द्य है। इसलिये आज तो हमें आपको सबको निराहार ही रहना चाहिये और रात्रि भर भगवन्नाम कीर्तन करते हुये जागरण करना चाहिये। राजन् ! हम लोग तो आपसे मिलकर ही तृप्त हो गये ॥१-६॥ राजा ने प्रार्थना किया कि मेरे इस बालक की रक्षा पढ़ (झाड़ फूंक) दीजिये जिससे चिरंजीवी हों। राजा की वात्सल्य भूषित वाणी सुनकर हंसते हुये ब्रह्मा ने गणेशजी से कहा कि हे विघ्नविदारक, परम विष्णु भक्त, परशु पाणि और सर्व मङ्गलकर्त्ता आप राजकुमार की रक्षा पढ़ (झांड़फूंक) दीजिये ॥७-१०॥ ब्रह्मा की आज्ञा सुनकर गणेश बारंबार प्रेमपूर्वक रामजी को

देखकर मन में हँसे और बुद्धि से विचारने लगे कि विधाता ने कहा कि—"अस्य वालकस्य" रक्षा करो तो इसका क्या अर्थ है ? मेरे मन से तो ऐसा अर्थ ज्ञात होता है कि "अकार माने वासुदेव, स्यमाने है और बाल माने केश अर्थात् क + ईश = ब्रह्मा, ईश शिव हुआ "बालंह्री बेर बर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बु नामच। (अमर कोष) अतः "अस्य बालकस्य" शब्द का अर्थ तो हुआ 'पर ब्रह्म' परन्तु यह अर्थ किसी से न कहकर मैं सदैव मन में ही स्मरण किया करूंगा ॥१६-२२॥ ऐसा निश्चय करके गरुड़ पक्ष के समान कानों को फटफटाते हुये रामजी के शरीर पर सूंड़ घुमाने लगे। कौतुकी रामजी ने भयातुरता का नाट्य करते हुये किंचित् ओंठ सिकोड़ा (संकुचित किया) रोने के लिये तब गणेशजी ने अपना शूंड समेट लिया। तब ब्रह्माजी उठकर चारों मुँह से तात् ! तात् ! कहने लगे। ब्रह्माजी के चारमुख की पंक्ति देखकर रामजी खिलखिलाकर हँस पड़े। तब ब्रह्माजी ने हाथ में लम्बा सा कुश लेकर रक्षा पढ़ दिया ॥२३-२९॥ तब शंकरजी उठकर प्रार्थना करने लगे कि इसी बालरूप से मुझ सेवक के हृदय में सदा निवास कीजिये। परन्तु शिव के पांच मुख की पंक्ति देख रामजी किंचित भी नहीं हँसे। तब स्कन्ध कुमार उठकर अपने छवों मुख से कहने लगे कि आप गजानन को देखकर ही क्यों रोने लगे। यह मेरा छ मुख देखकर क्यों नहीं डरते। यह सुनते ही भवानी सतीजी ने कहा जो दशमुख को मारेगा, हजार मुख पर सोता है वह तुम्हारे छं मुख से डर जायेगा ॥२८-३४॥ देवी की बात सुनकर सभी देवता हँसने लगे। पिता की गोद में रामजी भी हँसने लगे। राजा ने यद्यपि देवताओं की बात नहीं समझा परन्तु रामजी को हँसते देखकर हँस दिया। राजा से सत्कृत होकर सभी देव गन्धर्व किन्नरादि गण श्रीरामरक्षा पढ़कर अपने अपने वाहनों पर बैठकर अपने-अपने स्थान को गये ॥३५-३८॥

इतित्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशो अध्याय

राजा दशरथ ने प्रसन्न होकर बालक को अन्तःपुर में कौशल्याजी के पास भेज दिया। कौशल्या भी इन्द्र नीलमणि सुन्दर श्रीरामजी को गोद में लेकर बैठीं

उस समय वात्सल्य प्रेम के कारण दूध टपकने से अंचल आर्द्र हो उठा। तभी अन्य रानियाँ वहाँ जाकर कहने लगीं कि गणेश शुंड से रामलला डर गये हैं अतः रक्षा कीजिये। तब सब रानियों सहित कौशल्याजी रक्षा पढ़कर झाड़ने फूँकने लगी ॥१-४॥ रक्षा—शंख चक्र गदाधारी विष्णु तुम्हारे पांवों की रक्षा करते रहें। प्रजापति मेढ और निऋ॔ति गुदेव तद (अधो इन्द्रियों) का रक्षा करते रहें। समान वायु के देवता नाभिकी, अपान के देवता गति की, अज मनकी, चन्द्रमा बुद्धि की, स्वयँ हरि चित्त की; शूलधारी दिगम्बर शिव अहंकार की, जलाधीश वरुण जिह्वा की, अग्नि मुख की, अश्विनी कुमार नासिका की, सूर्य नेत्रों की, दिग्देवता कानों की, देवराज इन्द्र बाहुओं की, वायुदेव रोमों की और महाविष्णु तुम्हारे सर्वाङ्ग की रक्षा करते रहें। सामने सुदर्शन चक्र, पीछे कौमोद की गदा, डाकिनी भूत प्रेत से नन्दक खड्ग और कालिका सभी आपत्तियों से नृसिंह, दौड़ते में त्रिविक्रम, काल से शारङ्ग धनुष व्याधियों से दिव्यवाण, सोते समय श्री रंग, जागते समय श्रीपति, सर्पों से गरुड़, कोध से शेष, कुपथ्य से धन्वन्तरि, भोजन के समय लक्ष्मी और नन्द सुनन्द जय विजय शील सुशील आदि बैकुण्ठ के पाषद अङ्ग रक्षक रूप में सदैव रक्षा करते रहें। पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, वन, समुद्र, कुश, मशक, दंश, क्षुद्र रोग गण, गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, श्वापद, पक्षियां समस्त द्विपद, चतुष्पद, बहुपद, अपद जड़ाजड़ आदि के नियन्ता देवतागण, दिन रात्रि, पहर घड़ी, सम्वतसर आदि के नियन्ता तथा गन्धर्व, अप्सरायें, पितरगण, मातृकायें, सिद्ध, वैतालिक, यज्ञ, रक्ष, देवर्षिगण और प्रजापति आदि सभी सदैव तुम्हारी रक्षा करते रहें ॥५-१८॥ इस प्रकार बारंबार रक्षा पढ़कर बहुत दान दिया और गुरुदेव वशिष्ठजी को बुलवाकर विधिपूर्वक रक्षा पढ़वाकर रामलला के हाथ से हजार गायों का दान ब्राह्मणों को कराया। रामलला के कल्याणार्थ कैकेयी ने एक सहस्र स्वर्ण घट दान किया। इसी तरह लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न की भी रक्षा की गई। वशिष्ठादि ब्राह्मणगण विपुल दक्षिणा लेकर अपने-अपने आश्रम पर गये और रामजी हर्षित होकर दूध पीने लगे। श्रीरामजी को किलकते देखकर भीतर बाहर सारा राज समाज प्रसन्नता से भर उठा ॥१९-२४॥ सभी दास दासियों, नट नर्तकादिकों उपजीवियों को खूब पुरस्कार मिला। पंडितों को चाहिये कि उक्त (५ से १८ तक १४ श्लोकों में पठित) रक्षा मंत्र से सभी बालकों

की रक्षा किया करें। इससे बालकों को डाकिनी, भूत, प्रेत, कुदृष्टि (नजर) एवं क्षुद्ररोगगण कोई बाधा न दे सकेंगे। इससे अल्पायु या अकाल मृत्यु न होगी। और जो कोई इस रक्षा को स्वयं अपने लिये पढ़ता है वह महान् पुण्य एवं सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। इस मङ्गलमय चरित्र के सुनने सुनाने का भी महान् फल है ॥२५-३२॥ इति चतुर्विंशोमोऽध्याय ॥२४॥

पंचविंशो अध्याय

महर्षि शौनक ने सूतजी की प्रशंसा करते हुए आग्रह किया कि भाइयों के सहित श्रीरामजी की शिशु क्रीड़ा का पुनः वर्णन कीजिये। क्योंकि कानों की सार्थकता श्रीरामचरित्र श्रवण में ही है। सूतजी कहने लगे कि एक बार इसी तरह महर्षि मार्कण्डेय जी ने श्रीबाल्मीकिजी से चित्रकूट में आग्रह किया था जैसा आप पूंछ रहे हैं तब उन आदि कवि ने जो उनसे कहा था वही मैं आपसे कहता हूँ ॥ १-५ ॥ चारों भाई श्रीरामजी मणिमय आँगन में प्राकृत बालकों के समान हाथ और घुटने से रेंगते हुए कभी तो वेग से और कभी धीरे-धीरे इधर-उधर घूमते हुए खेलते थे और सब ओर अनेकों मातायें खड़ी बैठी बालक्रीड़ा का आनन्द ले रहीं थीं। कभी अपने पगनूपुर का शब्द सुनकर चारों ओर देखने लगते हैं कि यह रुन्भुन रुन्भुन-शब्द कहाँ से आ रहा है और कभी करधन के घूंघरों का शब्द सुनकर भागकर जो माता पास पड़ती उसी की गोद में चले जाते, पर तुरन्त ही गोद से उतरकर पुनः खेलने लगते हैं ॥६-१३॥ कभी कोई भाई मणिखम्भ में अपना प्रतिबिंब देखकर उसे दूसरा बालक मानते हुये हाथ से छूना चाहते हैं और न मिलने पर रोने लगते हैं। कभी उस प्रतिबिंब के पास मुंह करके जोर से किलकारी मारने लगते हैं। कभी कुछ कूजने लगते हैं। कभी जलपात्र में चन्द्र-बिंब देखकर पकड़ना चाहते हैं और न मिलने पर जब रोने लगते हैं तो मातायें चन्द्रकांतमणि का बना हुआ चन्द्रमा उस जलपात्र में चुपके से डाल देती हैं जिसे पाकर राजकुमार प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं ॥१४-२४॥ इसी तरह खेलते हुए पिजड़े के शुक की तरफ अंगुली करते हैं कभी मैना की बोली पर ध्यान देकर उसकी आवाज की नकल करते है। बाजपाल सेवक कभी अपना शरभाकृति का बाज दिखाता —उस पक्षी के शिकार की विशेषता बतलाता है कभी श्येन (वहींवाज) पाल

अपना सिखाया हुआ श्येन दिखलाता है। इस तरह पक्षियों को देखकर श्रीराम जी हँसते किलकते हैं तो मातायें उन पक्षी पालकों को खूब पुरस्कार देती हैं। कभी चारों भाई परस्पर हाथ पकड़कर खड़े होते हैं कभी अकेले भी खड़े होते हैं पर तुरन्त ही गिर पड़ते हैं ॥२५-२८॥ इति पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षष्टविंशो अध्याय

परम हरि भक्त भुशुण्डि नामक काकर्षि अपने स्थान नीलाचल से आकर आँगन में श्रीरामजी की बालक्रीड़ा को देख-देखकर आनन्द ले रहे थे। एक दिन देखा कि लड़कों के मध्य में श्रीरामजी शष्कुली (पूरी) खाते हैं और किलकते हैं। यह देखकर भुशुण्डि काक को संदेह हुआ कि ये वेदवेद्य परब्रह्म कैसे हैं? यदि ये विश्वंभर हैं तो अपनी शक्ति मुझे दिखायें। ऐसा निश्चय करके बड़ी फुर्ती से श्रीरामजी के हाथ से पूरी छीनकर उड़ चले। सर्वात्मा श्रीराम जी काकर्षि के मन की बात जानकर बड़े जोर से हँसे और एक रूप से वहीं खेलते हुये दूसरे रूप से काक के साथ उड़े ॥१-५॥ जहाँ-जहाँ भुशुण्डि जाते हैं वहाँ-वहाँ अपने पीछे श्रीरामजी को देखते हैं। पातालों में जाते हुये जब सातवें पाताल में गये तो देखा कि तैंतीस हजार ३३००० योजन अर्थात् ३९६००० मील के घेरे में कुण्डली लपेटे हुये बर्फ के पहाड़ सरीखे उज्वल वर्ण वाले शेष हैं और उनकी गोद में श्रीरामजी हैं पुनः पीछे देखा तो एक राम और हैं अब तो जिधर देखते हैं उधर-सब ओर रामजी ही को देखा। वहाँ से उड़कर पुनः भूलोक उड़ते हुये इन्द्रपुरी में पहुँचे ॥६-१०॥ वहाँ देखा कि इन्द्रासन पर बालक रामजी हैं उनके दोनों ओर इन्द्र और इन्द्राणी शची चमर कर रहे हैं। वहाँ से उड़कर क्रमशः अग्नि, धर्मराज, निऋतिदेवी, वरुणदेव, वायुदेव, चन्द्रमा, शंकरजी आदि सबके लोक गये और सर्वत्र उन लोकपतियों को श्रीरामजी की सेवा करते देखा ॥११-१९॥ तब वहाँ से उड़कर सत्यलोक को गये वहाँ भी देखा समस्त ऋषियों एवं देवताओं के साथ सपत्नीक ब्रह्माजी बालक राम की परिचर्या कर रहे हैं। पुनः भूलोक आकर भी वही हाल देखा तो अपने मन का भ्रम समझ अपना बहुत बड़ा रूप पर्वत को ढंक लेने सरीखे बनाया। दोनों पाँव मानो बड़े-बड़े दो ताड़ के वृक्ष हैं पावों के नख मानों हाथी हाँकने के अंकुश हैं और महाभयंकर पर्वताकार चोंच

है। तब रामजी ने गरुड़ को बुलाया और गरुड़ पर बैठकर काग के ऊपर दौड़े ॥२०-२६॥ तब गरुड़ और भुशुण्डि में नख चोंच और पखनों से लड़ाई होने लगी कुछ देर में अत्यन्त घायल एवं अशक्त होकर काकराज पृथ्वी पर गिर पड़े और श्रीराम गरुड़ से उतरकर भुशुण्डि की छाती पर खड़े हो गये और पूंछा कि कहो खग ! अब तुम्हारे साथ कौनसा व्यवहार किया जाये। तब भयभीत भुशुण्डि गद्गद् स्वर से श्रीराम जी की प्रार्थना करने लगे ॥२८-३२॥

भुशुण्डिजी बोले कि परम महान् एवं बाल रूपी श्रीरामजी के लिए नमस्कार है। जो श्रीरामजी ब्रह्मा तथा शिव के उत्पत्तिकर्त्ता पिता हैं, सदैव जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति से भिन्न हैं, सर्वाध्यक्ष, सर्वान्तर्यामी, योगिध्येय, योगेश्वर एवं भक्तियोग से प्राप्त होने वाले हैं। जो आदि बीज शुद्ध पुरुष विश्व-रूप विश्वेश्वर हैं ऐसे श्रीरामजी को नमस्कार है। हे श्रीरामजी कोई आपको जगदीश्वर समझ कर, कोई पचीस या छब्बीस तत्व मानकर, कोई ज्योतिरूप, मानकर, कोई ज्योतिरूप कोई अरूप, कोई व्यापक, कोई नित्य लीलायुक्त परमेश्वर जानकर, कोई भिन्न-भिन्न अवतारों का ही ध्यान करते हैं। कोई वैराग्यवान् लोग घर त्यागकर वन में जा सदैव आपके घनश्यामरूप को देखा करते हैं। कोई ज्ञानी ज्ञानबल से आपको व्यापक जानते हैं तो भागवतगण भक्ति बल से आपको ब्रह्माण्ड से भिन्न-भिन्न जानकर भजते हैं। कोई यमनियमादि द्वारा आपको अपने हृदय कमल में देखते हैं। जो जिस भाव से भजता है उसके भाव की पूर्ति उसकीभावनानुसार ही आप करते हैं। जगदुत्पादिका आपकी प्रबलामाया से मोहित होकर जीव अहं मम (मैं मेरा) करता रहता है। आप जिस नित्यधाम में नित्य रमते हैं वह त्रिपाद्विभूति संकोच विकाश एवं ध्वंस से रहित हैं। वहाँ रहने वाले नित्य मुक्त जीव एवं आपके पार्षदगण भी यदि इस एक पाद में अवतरित होते हैं तो भी आपकी कृपा से कभी उन्हें माया स्पर्श नहीं करती। जो सदैव आपका भजन करता है जगत उससे दूर रहता है। जो सदैव आपका षडक्षर मन्त्रराज जपता है वह जीवन्मुक्त रह कर अन्त में परमपद प्राप्त कर लेता है। जो आपके चरण को ध्यान करता है वह दुःख सागर संसार से तर जाता है आप तो प्रत्यक्ष ही अपने दोनों श्रीचरण मेरी छाती पर रखकर खड़े हैं तब भला मैं दुःख से क्यों न छूटूं

जाऊँगा । मैंने आपकी महिमा देखने के लिये पूड़ी छीना था सो किंचित् मात्र ही महिमा देखकर घबड़ा गया, पर मेरा अहोभाग्य है जो आपके चरण मेरी छाती पर रखे हैं । हे करुणानिधे ! अब कृपया छोड़ दीजिये ॥३३-५२॥ शुद्ध हृदय से काक की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीराम जी ने भुशुण्डि की छाती पर से पाँव हटा लिया तब भुशुण्डि ने उठकर अपना मस्तक श्रीराम-चरणों पर रख दिया और श्रीरामकरकंज भुशुण्डि के मस्तक पर हुआ । बार-बार श्री रामपद में मस्तक रखकर भुशुण्डि ने गरुड़ के चरणों पर प्रणिपात किया तब गरुड़ ने प्रेम से काक को उठाकर कहा कि हे श्रीरामचरणाचक काक ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, एक दिन श्रीरामतत्व पूँछने तुम्हारे यहाँ आकर तुम्हारा यश बढ़ाऊँगा । लोग कहेंगे कि महाज्ञानी भुशुण्डि ने ही भक्तराज गरुड़ का अज्ञान दूर किया ॥५८-६१॥ भुशुण्डि ने कहा कि आप तो परम ज्ञानी भगवद्भक्त हैं, आपके चरण स्पर्श से ही मुझे सुन्दर दिव्यज्ञान प्राप्त हो गया, आपके पधारने से आश्रम सहित मैं धन्य हो जाऊंगा । इसके बाद श्री रामजी से प्रार्थना किया कि प्रभो ! इसी बालवीर रूप से सदैव मेरे हृदय में बसते रहिये । अपनी अनन्य भक्ति दीजिये जिससे आपकी प्रबला माया फिर कभी मुझे न व्यापे और आपके भक्तों का संग मुझे सदैव मिलता रहे, क्योंकि जो सुख साधु संग में है वह मोक्ष में नहीं है ॥६२-६८॥ काक की प्रार्थना पर दयालु श्रीरामजी ने एवमस्तु कहकर कहा कि तुम्हारे आश्रम पर मेरी माया अब कभी न व्यापेगी, तुम वहाँ नित्य मेरा भजन करते हुए मेरी कथा कहते रहना, तुम कभी गरुड़ को भी ज्ञान दोगे । तुम्हारे किये हुए स्तोत्र को जो मनुष्य नित्य पढ़ेगा उसको धन, पुत्र, प्रतिष्ठादि समस्त लौकिक वासनायें पूरी करके अन्त में उसे मोक्ष दूँगा ॥६९-६५॥ इस प्रकार श्रीरामजी ने भुशुण्डि को अक्षय वरदान देकर गरुड़ को विदा कर दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये । भुशुण्डि भी कुछ दिन अयोध्या रहकर भगवद्वाल क्रीड़ा एवं बालरूप का ध्यान करते हुए अपने आश्रम पर गये । सूतजी ने कहा कि इस तरह बाल्मीकि द्वारा मार्कंडेय से कही गई बालक्रीड़ा मैंने कही अब अन्यान्य मन हारी बाल लीलायें सुनाऊंगा ॥९६-७९॥

इतिषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

सत्ताइसवाँ अध्याय

अब चारों भाई श्रीरामजी जानुपाणि (बकैयाँ) से आँगन में घूमने लगते हैं तब अनेक दासियों दासों के रक्षक रहते हुए भी मातायें ताम्बूल भक्षण, शृङ्गार करना स्वर्ण शय्या आदि छोड़कर बालकों की देख-भाल एवं बालक्रीड़ा का आनन्द लेने प्रांगण में चारों ओर से एकत्र हो जाती हैं ।।१–५।।

कभी कौशल्या मातायें श्री राम-भरत आदि का हाथ पकड़ कर खड़ा करके चलना सिखाती हैं उस समय करधन और नूपुर जब मन्द-मन्द छुन-छुन बजते हैं तो बालक सब किलकारी मारकर हँसते हैं तब उनके कुन्दकली के समान दंतुलियों को देखकर मातायें अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। बंधूक (दुपहिया) पुष्प के समान लाल जिह्वा, सिन्दूर के समान लाल ओष्ठ, महादिव्य कपोल, चिबुक, शुकतुण्डवत नासिका दिव्य धनुषवत् दोनों भी हैं, अलकों से आवृत मुख एवं चन्दन, केशर, कपुर की ऊर्ध्वपुण्ड तिलक श्री राम भरत के तथा कस्तूरी मिश्रित चन्दन की ऊर्ध्वपुण्ड तिलक श्री लक्ष्मण शत्रुघ्न के शोभित है। दोनों जोड़ी महादिव्य इन्द्र नीलमणि एवं शुभ्र स्वर्णस्फटिक मणि की कान्ति वाले कुमारों को मातायें बार-बार गोद में लेकर मुख चूमती हैं कण्ठ में लगाती हैं। श्रीरामचन्द्रादि बालकों की अपूर्व सुन्दरता को देखकर नजर लग जाने की डर से मातायें तिनका तोड़कर टोटका करती हैं, बालकों के माथे में तिलक के पास काजर की मोटी मट्टी रेखा या बड़ा-सा बुन्दा लगा देती हैं पर उससे और भी शोभा बढ़ जाती ।।६–१५।। एक बार राजा दशरथ कौशल्या के महल के प्रांगण में रामलला को गोद में लिये प्यार कर रहे थे तभी कैकेई तथा सुमित्रा भरत लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को लिये वहीं पहुँची। राजा ने तीनों कुमारों को भी गोद में बैठा लिया तभी अन्य सैकड़ों रानियाँ भी वहीं पहुँच गईं। उसी समय अपनी पत्नी एवं भृत्यों सहित विश्वावसु गन्धर्वराज द्वार पर आया और आज्ञा पाकर महा प्रांगण में राजा के सामने जाकर प्रणाम किया ।।१६–२१।। गन्धर्व ने राजा से कहा कि "विश्व एव वसु" सारा संसार जिसका धन हैं इसी से मैं विश्वावसु नाम से विख्यात हूँ। मैं अपने गुणों से कुमारों सहित आप सबको प्रसन्न करना चाहता हूँ। ऐसा कहकर मृदंग, मुरज, वंसी आदि छेददार वायु

के योग से बजने वाले बाजे, वीणादितार से झनकार पूर्वक बजने वाले बाजे तथा कास्य ताल आदि अनेक बाजों के साथ गाने लगा कभी स्वयं भी बजाता, साथ की अप्सरायें तालस्वर पर नृत्य करतीं ।।२२–२६।। उनके नृत्य गान वाद्य का ऐसा ताल बँधा कि राजा, रानी, कुमार, दास, दासी, पालतू मृग, तोता, मैना, मयूर, तीतर, बन्दर, कुत्ता, बिल्ली आदि सभी मोहित होकर जड़ चैतन्य और चैतन्य जड़वत हो गये । इसी बीच में चारों बालक पिता की गोद से उतर कर विश्वावसु की गोद मे चले गये । तब वह भी गान छोड़कर कुमारों को दुलारने लगा और अपने भाग्य को सबसे श्रेष्ठ मानने लगा ।।२७–३१।। राजादि भी कुमारों को प्रसन्न देखकर गान की प्रशंसा करने लगे कि जब इसके गाने से बच्चे तक मोहित हो गये तब औरों की क्या चर्चा । मातायें हाथ फैलाकर बालकों को बुलाने लगीं कि पुत्रों आओ दूध पियो, गन्धर्व इनाम लेकर अपने घर जायें । बारम्बार बुलाने पर भी बालक आते नहीं अपितु और भी गन्धर्व की गोद में चिपटते जाते हैं । ऐसा देखकर सभी को आश्चर्य हुआ ।।३२–३७।।

तब कौशल्या और सुमित्रा ने कहा कि तुम बालकों के सुख के लिये यहीं रह जावो । गन्धर्व ने कहा कि मैं नित्य देवराज के सामने गाने पर नियत हूँ अतः उनकी आज्ञा से यहाँ आकर रहूँगा । कौशल्या ने कहा ठीक है जाओ इन्द्र से आज्ञा लेकर आ जाओ, मेरे बालकों के सुख के लिये इन्द्र रोकेंगे नहीं । गन्धर्व के जाने का निश्चय सुनकर कैकेई क्रोध करके बोलीं कि खबरदार मेरे बालकों को मोहित करके तू नहीं जा सकता । इन्द्र की इतनी हिम्मत नहीं है कि महारानी कौशल्या की आज्ञा को हटा दें । यदि गर्व में आकर ऐसा किया तो मारे वाणों के पाताल में भिजवा दूँगी । ऐसा कहकर मझली महारानी ने धनुष वाण राजा के सामने रखकर कहा कि मैं पत्र लिख देती हूँ आप वाण से इन्द्र के पास भेज दीजिये । राजा ने वैसा ही किया । इन्द्र के सामने वाण गिरा और इन्द्र ने महाराज का वाण देखकर स्वयं पत्र बाँचा और महारानी के क्रोध का कारण सबको सुनाया । सुनकर सभी देवता हँसने लगे कि भला हम कब गन्धर्व को मना कर सकते हैं । हम लोग तो राजा की आज्ञा में सदैव से ही हैं, राजा के ही पराक्रम से तो हम लोग दैत्यों से निर्भय रहते हैं तब भला प्राणों से प्रिय उनकी आज्ञा कैसे टाल सकते हैं ।।३८–५३।। परन्तु हमारे

भाव प्रेम को न जानकर निरपराध हमें रानी ने कटु वचन कहा है इसका फल रामराज्याभिषेक के समय रावणबधार्थ शारदा की प्रेरणा से इन्हीं रानी द्वारा बनवास कराकर अनन्तकाल के लिये अपयश देकर इस परुष वाणी का बदला लेंगे । ऐसा कह कर अयोध्या दूत भेजा ॥५४–५९॥ दूत ने जाकर राजा रानी को प्रणाम किया और देवेन्द्र का सन्देशा कहा कि इन्द्र ने कहा है कि हम सब स्वर्ग निवासी सदैव श्रीमान् की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं । विश्वावसु तो वहाँ रहेगा ही आज्ञा हो तो मंजुघोषा, उर्वशी, तिलोत्तमा, रम्भा आदि स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरायें वहीं भेज दें यही नहीं शची के सहित हम भी आपके द्वारपाल बनकर रहें । दूत की वचन सुनकर महाराज ने दूत से कहा कि तुम जाकर देवराज से निवेदन कर दो कि ये बच्चे आपके ही हैं इनकी प्रसन्नता का भार तो आप ही पर है । हमारी और आपकी वस्तु में कोई भेद है ही नहीं जो भेद माने वे मूर्ख हैं । राजा की बात सुनकर दूत स्वर्ग गया और दूत की बात सुनकर इन्द्रादि देवगण प्रसन्न हो गये । विश्वावसु ने इन्द्र की आज्ञा पाकर हर्षित होकर राजकुमारों को अपनी गोद से अलग किया, विश्वावसु की पत्नी ने बालकों को ले जाकर रानियों की गोद में दिया । इस प्रकार वह गन्धर्वराज वहाँ रहकर राजा रानी और राजकुमारों का मनोरंजन करने लगा ॥६०–७०॥ इति सप्तविंशति तमोऽध्यायः ॥२७॥

अट्ठाइसवाँ अध्याय

एक बार महारानी कौशल्या जी अपने महल के ऊपरी प्रकोष्ठ में बालक राम को गोद में लिए बैठी थीं अनेक दासियाँ सेवा में थीं । उस समय महाराज दशरथ जी सुमित्रा जी के महल में बैठे लक्ष्मण और शत्रुघ्न को गोद में लिये दाहिनी जांघ पर लक्ष्मण को और बाईं जांघ पर शत्रुघ्न को बैठाये खेला रहे थे ॥१–६॥ उसी समय सुन्दरी नामवाली कौशल्या की खास दासी किसी काम-वश सुमित्रा के महल में गई । पर वहाँ पर राजा को पुत्रों से खेलने और छोटी महारानी सुमित्रा से हँसते बोलते देखकर लज्जित हो लौट आई और कौशल्या के पास जाने पर कौशल्या की गोद में रामजी के साथ लक्ष्मण और शत्रुघ्न को खेलते देखा तो अपना भ्रम समझ पुनः सुमित्रा भवन में गई वहाँ भी पूर्ववत्

राजा की गोद में दोनों कुमारों को देखा तो फिर कौशल्या भवन की अटारी पर वैसे देखा पुनः-पुनः करके इक्कीस बार घूमी ॥७–१२॥ इस तरह चक्कर लगाते देखकर इक्कीसवीं बार राजा ने पूँछा कि अरी सुन्दरी दासी ! तू क्या पागल हो गई है जो अकारण बिना कुछ कहे सुने बार-बार आती है और उल्टे पैर लौट जाती है। राजा से बार-बार पूँछे जाने पर भय से थर-थर काँपती हुई अभय वरदान माँग कर राजा रानी और दोनों कुमारों को बार-बार देखते हुये दासी बोली ॥१३–१७॥ प्रभो ! इन दोनों कुमारों को मैं एक साथ ही यहाँ और बड़ी महारानी के पास भी देखकर अपना भ्रम दूर करने बारम्बार यहाँ वहाँ आती-जाती हूँ और बार-बार दोनों जगह देखकर सन्देह में पड़ी हुई हूँ। यह सुनकर सत्यसंध राजा ने डाँटा कि क्या बकती है और तुरन्त कौशल्या की अटारी पर गये तो राजा ने भी दोनों पुत्रों को बड़े कुमार के साथ खेलते पाया ॥१८–२३॥ वहीं से गवाक्ष (खिड़की) से झाँककर सुमित्रा के आँगन में भी दोनों छोटे कुमारों को छोटी रानी की गोद में खेलते देखा आश्चर्य में पड़कर राजा विचार करने लगे जब कुछ निर्णय न कर सके तो गुरुदेव वशिष्ठ जी को रथ भेजकर बुलाया और दोनों जगह कुमारों को दिखला कर कारण पूंछा। वशिष्ठ जी क्षण भर विचार करके समझ गये कि ये चारों राजकुमार तो साक्षात् परब्रह्म हैं। एक साथ हजारों करोड़ों क्या असंख्य रूप बना सकते हैं। परन्तु हम यदि तथ्य राजा से बतला दें तो फिर इन्हें वात्सल्य रस का आनन्द नहीं मिल सकता ॥२४–३१॥ ऐसा विचार कर बोले कि यह तो गन्धर्व विश्वावसु का एक खेल आपको भ्रम में डालने के लिये है। वैसे असली लक्ष्मण शत्रुघ्न तो सुमित्रा के पास ही हैं। राजा ने तुरन्त ही गन्धर्व को बुलवाया। गन्धर्व आया तो लक्ष्मण शत्रुघ्न गन्धर्व के कन्धे पर भी बैठे दीख पड़े चारों ओर पुत्रों को देखकर राजा हँसे उसी समय कई लक्ष्मण शत्रुघ्न गायब हो गये केवल सुमित्रा की गोद में ही रह गये। बेचारा गन्धर्व भी कुछ नहीं समझ पाया ॥३२-३७॥ तब राजा और वशिष्ठ जी सुमित्रा भवन में गये, तो मुनि ने कहा कि आपने माया तो देख ही लिया इसलिये लक्ष्मण को राम के साथ और शत्रुघ्न को भरत के साथ खेलने का प्रबन्ध कर दीजिये तो मैं ऐसा उपाय कर दूँगा कि कभी भी

गन्धर्वी माया न चलेगी । राजा के स्वीकार करने पर मुनि चले गये तब राजा ने सुमित्रा से कहा कि लक्ष्मण को बड़ी रानी के महल में राम के साथ और शत्रुघ्न मझली रानी के महल में भरत के साथ खेलने को करदो तो गन्धर्वी माया का भ्रम न हो । सुमित्रा ने हाथ जोड़कर कहा कि पति साक्षात नारायण रूप होते हैं अतः आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।।३८-४४।। तब से नित्य प्रातःकाल मगधनरेश सुमित्रा की कन्या गुणवती (सुमित्रा) जी राम के पास लक्ष्मण और भरत के पास शत्रुघ्न को भेज देने लगीं और जब बालक निद्राकुल हो जायें तो दिन में वहीं पर रात में सुमित्रा जी के पास दासियाँ लाया करें । और कुछ दिन के बाद तो चारों कुमार दिनभर मझली रानी कैकेई के पास ही रहने लगे ।।४६-५०।। इत्यष्टाविंशोऽध्याय ।।२८।।

उन्तीसवाँ अध्याय

एक दिन बाल वस्त्राभूषणों से सुभूषित इन्द्र नीलमणि श्याम सुन्दर श्री रामजी को गोद में लिये हुये राजा दशरथ जी महल से बाहर निकले । उस समय रघुवंश परिवार में दशरथ के भाई लगने वाले वीरसेन की पत्नी रत्नालका ने अपनी अटारी पर से मनमोहन बालक को देखा और वे देखकर वात्सल्य रस में विभोर हो गईं बारम्बार बालक राम को देखते हुये देह गेह की सुध भूल कर अटारी पर से नीचे गिर पड़ी । मूर्छित वधू को दासियां सखिया उठा कर पलंग पर लेटाया पंखा किया होश में आने पर रत्नालका देवी ने किसी से कुछ कहा नहीं और मन में प्रण कर लिया कि जब रामलाल आकर मेरी गोद में खेलेंगे तभी अन्न जल ग्रहण करूँगी ।।१-४।। उनके पति राज सेनापति वीरसेन ने बहुत-बहुत उत्तमोत्तम औषधि करवाईं पर कोई लाभ न हुआ; गिरने से चोट लगी नहीं थी वैद्यों ने अधि (मानसिक रोग) बतलाया । दुखी सुनकर जाति गोत्र सम्बन्ध की मर्यादा मानकर साम्राज्ञीपन के गौरव का ध्यान न करके राजा से आज्ञा लेकर बीस दासियों सहित पैदल ही सेनाध्यक्ष के महल में श्री कौशल्या जी गईं ।।१५-२०।। महारानी को साधारण रीति से आते देखकर अपने भाग्य की सराहना करते हुये वीरसेन ने स्वागत करके अपने महल में बीमार वधू के

पास पहुँचाया। उज्वल नीलणिम राम को गोद में लिये हुए महारानी को देखते ही रत्नालका ने शीघ्र ही पलंग से उतर कर सुन्दर सिंहासन पर रानी को पधराया। घनश्याम राम को देखते ही वह पूर्ण स्वस्थ हो गई और हाथ फैलाकर अपनी गोद में बुलाने लगीं राम जी तो साक्षात् परमात्मा ठहरे, हँसते किलकते चाची की गोद में चले गये। ।।२१-२५।। वह देवी बारबार चूमती और कण्ठ में लगाती हुई परमात्मा से मनाने लगीं कि हे रंगनाथ प्रभो ! ऐसा ही पुत्र मुझे भी दो रामजी पुनः कौशल्या जी की गोद में जाकर हँसने लगे। रत्नालका को सुखी देखकर बहुत प्रसन्न होते हुये कौशल्या जी अपने महल वापस गईं। परन्तु श्री राम के अतिरिक्त किसी ने भी रत्नालका देवी के दुःख का कारण नहीं जाना। महर्षि बालमीक ने बहुत दिन के बाद ब्रह्मा के आशीर्वाद से रत्नालका का चरित्र जानकर शिष्यों को बताया ।।२६-२८।। इत्येकोन त्रिंशाऽध्यायः ।।२६।।

तीसवाँ अध्याय

श्री शौनकजी ने प्रार्थना किया कि हे श्रीराम-कथामृत प्रदाता श्रीसूतजी ! रत्नालका देवी का वृतान्त पूरा सुनाइये कि वीरसेन के सहित उस देवी ने श्रीरामजी के लिये क्या किया ? श्रीरामजी का स्वभाव तो कल्पवृक्षवत् है तो श्रीरामजी कब उन दम्पति के पुत्र हुये ।।१-४।। सूतजी ने कहा कि हे महामुने शौनक जी ! गुणातीत श्रीरामजी के गुणों को भला मैं क्या कह सकता हूँ। श्रीरामभद्रजी कैसे मेरे पुत्र हों ? यही विचारते-विचारते दम्पत्ति बीरसेन—रत्नालका को कुछ दिन बीत गये। भगवत्प्रेरणा से एक दिन दोनों रथ पर बैठकर बशिष्ठ जी के आश्रम पर गये। उस समय विष्णुमित्र शर्मा नाम का वशिष्ठ जी का शिष्य आश्रम के द्वार पर उपस्थित था उससे पता लगाकर दम्पति ने रथ त्यागकर आश्रम में जाकर महर्षि बशिष्ठजी के चरणों में प्रणिपात किया ।।५-१३।। आशीर्वाद देकर महर्षिजी ने दम्पति के आने का कारण पूँछा। रत्नालका ने गुरुजी के चरणों पर बार-बार सिर रखकर प्रार्थना किया कि प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं तब मुझे स्पष्ट कहने के लिये बाध्य न कीजिये। महर्षि ने क्षण काल तक ध्यान लगाकर दम्पत्ति की सुन्दर वात्सल्य भावना को जान लिया ।।१४-२१।।

श्रीवशिष्ठजी ने कहा देवि रत्नालके ! तुम्हारा मनोरथ तो अत्यन्त मनोहर है परन्तु बहुत कष्ट करने पर मनोरथ की सिद्धि होगी । इसलिये तुम दोनों बद्रिकाश्रम जाकर श्रीनारायण की आराधना करो । चैत्र शुल्का नौमी का व्रत रखते हुये कठोर तप करो, वर्षाकाल में खुले आकाश के नीचे निराधार होकर रहो, जाड़ा की ऋतु में जल में शयन करो और गर्मी के दिनों में तप्त सूर्य के नीचे (मध्यान्ह में) दिन भर पंचाग्नि के भीतर बैठकर तप करो, दोनों व्यक्ति स्वल्प फलाहार सेवन करना, जिह्वा से निरन्तर श्रीराम षडक्षर मन्त्रराज का जप करते हुये अतसी पुष्प संकाश द्विभुज रघुनन्दन का ध्यान करते रहना । इस तरह सविधि नौमीव्रत करने से महान दुर्घट कार्य भी सिद्ध हो जाता है । ऐसा करने से द्वापरान्त में गोकुल में वीरसेन ! तुम तो नन्द होगे और यह रत्नालका देवी यशोदा नाम से तुम्हारी पत्नी होंगी तब श्रीरामजी कृष्ण नाम से तुम्हारे पुत्र बनकर तुम्हें बालक्रीड़ा का आनन्द देंगे ।।२२-३२।। ऐसा सुनकर दम्पत्ति प्रसन्न मन से गुरुदेव को प्रणाम करके अपने घर गये और ब्राह्मण, मागध, बन्दी एवं सेवकों को एकत्र करके अपने घर की समस्त सम्पत्ति, हाथी, घोड़े, रथ, गायें, वस्त्र, रत्न आदि यथा योग्य वितरण करके श्रीदशरथजी से प्रणाम पूर्वक विदा लिया और ब्रह्मचर्य का नियम लेकर सामान्य वस्त्र धारण किया । अपना महल गुरूजी को दे दिया, उस समय समस्त सभासदों के सहित स्वयं महाराज विदा करने आये और समस्त अयोध्यावासियों के सामने उनकी प्रशंसा करते हुए राजा ने कहा कि—चतुर्थावस्था में बन जाना तो हमारे रघुकुल की प्राचीन परम्परा है, अतः जाइये ।।३३-४१।।

तीर्थं जिगमिषोर्यस्तु यात्रा भंगं करोति च ।
रौरवे पच्यते मूढ़ साकं पितृ पितामहैः ।।४२।।

जो कोई तीर्थ जाने वाले की यात्रा भंग करता है वह मूढ़ अपने पुरखों के सहित रौरव नर्क में कष्ट पाता है । अतः आप जाइये यद्यपि कि अभी वन की अवस्था नहीं है । भगवान नारायण आपकी मनोकामना पूरी करें । दम्पत्ति वीरसेन राजा दशरथ एवं रानियों को प्रणाम करके यथा योग्य सबसे मिलकर बद्रिकाश्रम गये और वहाँ गुरुजी की बताई विधि से तप करने लगे । ग्यारह वर्ष

के बाद श्रीरामजी ने प्रगट होकर वर माँगने को कहा। उनके वरदान माँगते समय श्रीराम प्रेरणा से उनकी जिह्वा पर सरस्वती बैठ गई ॥४२-५०॥ दम्पत्ति ने माँगा कि प्रभो! ग्यारह वर्ष के तप पर आप मिले अतः ग्यारह वर्ष तक हमें बालक्रीड़ा का सुख दीजिये। श्रीरामजी ने एवमस्तु कहते हुये कहा कि द्वापरान्त में मेरी बालक्रीड़ा का सुख भोगकर अन्त में तुम दोनों अक्षय विष्णुलोक को जाओगे। इस समय तो तुम द्रोण और धरा नाम से वसु दम्पत्ति होकर स्वर्ग सुख भोग करो, यह वैवस्वत मनुका चौबीसवाँ त्रेता है, इसके अट्ठाइसवें द्वापर में तुम दोनों गोकुल में नन्द यशोदा होंगे तब मैं कृष्ण नाम से तुम्हें बालक्रीड़ा का परमानन्द प्राप्त कराऊँगा। यह कहकर रामजी अंतर्हित हो गये और वे दम्पति तन त्यागकर स्वर्ग में जाकर द्रोण और धरा नाम से वसु दम्पत्ति हुए। पश्चात् नन्द और यशोदा नाम से गोकुल में मनः कामना की सिद्धि पाया। जो इस कथा को कहता या सुनता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५१-६३॥ इति त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

पुनः शौनक के नौमीव्रत की विधि एवं माहात्म्य पूंछने पर सूतजी कहने लगे कि—पहले एक बार त्रेतायुग में महर्षि अगस्त्यजी महेन्द्राचल पर तप करने गये। उस महेन्द्र पर्वत पर साल, ताल, तमाल, आम, कदम्ब, खैर, आंवला, इमिली, धव, कपित्थ, बजुल (अशोक) जामुन, तेंदू, बेल, नीम, बेर, हरड़, बहेड़ा, खजूँर, आम्रातक (आमड़ा) पारिजात (हरिश्रृंगार), कटहल, कचनार, सरल, देवदारु, गुलाब, चम्पा, नागचम्पा, कटहरी चम्पा—ये सब वृक्ष तथा और भी अनेक दिव्य वृक्षों से वह महेन्द्रगिरि शोभित था। उसकी बड़ी-बड़ी शिलायें लताओं से आच्छादित थी, उस गिरि के ऊँचे शिखर पर मेघ गण विश्राम करते थे। वह गिरि मानो सूर्य मार्ग रोकने के लिये दूसरा विन्ध्य उठता ही ऐसा था। मणियों की प्रभा से रात में भी वह पर्वत प्रकाशमान रहता है। अनेक पक्षी एवं चतुष्पाद (पशु) आदि से परिपूर्ण उस पर्वत की शोभा देखकर अगस्त्यजी बहुत प्रसन्न हुये ॥१-१७॥ पूर्णिमा को सूर्यास्त के समय पूर्व में चन्द्रबिम्ब और पश्चिम में सूर्यबिम्ब एक साथ ऐसा मालूम देता है मानो

महेन्द्राचलरूपी गजेन्द्र के दोनों ओर दो बड़े-बड़े स्वर्ण घन्टा लटक रहे हों। उसमे अनेक नदियाँ एवं झरने नित्य प्रवाहित होते रहते थे। वहाँ नित्य देव सुन्दरियाँ मान छोड़कर पतियों के साथ क्रीड़ा करतीं थीं। अनेक किन्नरी जिनके मुख मनुष्य की तरह और अंग घोड़ी की तरह तथा किन्नर जिनके मुख घोड़े की तरह और अंग मनुष्य की तरह थे। उस पर्वत पर अनेक पुष्करणी (तालाब) थे जिनमें अनेक रंग के कमल खिले रहते थे जिनसे हाथियों के बच्चे खेलते रहते थे रात्रि में मणियों के समान ही अनेक औषधियों में प्रचुर प्रकाश निकला करता था। उस पर्वत के कानन अपनी सौंदर्य श्री इन्द्र के नन्दन वन को लज्जित कर रहे थे। ऐसे सुन्दर शान्तिमय वातावरण से सम्पन्न एकान्त स्थान पर अगस्त जी ने अनेक वर्ष तप किया। एक बार इसी प्रकार नौमीव्रत की विधी एवं माहात्म्य सुतीक्ष्ण जी ने भी वहीं पर अपने गुरु अगस्तजी से पूँछा था ॥१८-३८॥

इत्येक त्रिशोऽध्याय: ॥३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

अगस्त्यजी ने कहा कि पूर्ण परमात्मा श्रीरामजी का आविर्भाव चैत्र शुक्ल नौमी पुनर्वसु नक्षत्र मध्यान्ह वेला में हुआ है उस समय देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण गुह्यक आदि प्रसन्नता से दिव्य वाद्य बजाने लगे। जैसे मणियों में चिन्तामणि और वृक्षों में कल्पवृक्ष है वैसे समस्त व्रतों में नौमीव्रत है। जो कोई भी मुक्ति दायिनी नौमी का व्रत महोत्सव पुजादि करते हैं वे परागति को प्राप्त करते हैं ॥१-५॥ देव कार्य सिद्धि, साधु परित्राण और राक्षस विनाश के लिये स्वयं श्रीहरि ने नौमी को अवतार लिया था। यदि चैत्र शुक्ला नौमी पुनर्बसु नक्षत्रयुक्ता हो तो करोड़ों यज्ञ का फल देती है। उस दिन श्रीरामजी के उद्देश्य से किया गया, उपोषण, जागरण, दानादिकर्म अक्षय फलकारक होता है ॥६-११॥

जो व्यक्ति श्रीराम नौमी को नियम पुर्वक पितृ तर्पण करता है उसी समय उसके पितरगण श्री विष्णु के परमपद को चले जाते हैं। श्रीरामनौमी के दिन का किंचिद्दान भी महद्दानवत् हो जाता है। नौमीव्रत करने वाले श्रीराम नाम परायण लोग धन्य हैं, वे लोग अक्षय भगवद्धाम प्राप्त कर लेते हैं। तुला पुरुष

दानादि एवं सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में महादानादि से सैकड़ों गुण अधिक फल नवमीव्रत करने वाला प्राप्त करके पुनः माता के गर्भ में नहीं आता ॥१२-१८॥ अष्टमी विद्धा नवमी का व्रत नहीं करना चाहिये। नौमी को उपास और दशमी को पारणा करै। राजसिंहासनारूढ़ श्री सीतारामजी का शस्त्रास्त्र पार्षदादिसहित पूजन करै। जिस तरह पुष्कर के समान अन्य तीर्थ नहीं, गंगा के समान अन्य नदी नहीं और श्रीनारायण के समान अन्य देवता नहीं उसी तरह नौमी के समान अन्य व्रत नहीं। इसका माहात्म्य कोई कह ही नहीं सकता ॥१९-२६॥ सुतीक्षण ने पुनः पूंछा कि गुरुदेव! कृपया बतायें कि मुक्ति प्रदायक मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ जपनीय कौन मन्त्र है और कौन ध्यान है? अगस्त्य जी ने कहा कि सर्व पर, गुणातीत ज्योतिर्मय, निर्मल, विभु, परमतत्व, ब्रह्म इत्यादि पापनाशक कैवल्यपद का कारण, सर्वश्रेष्ठ जपनीय मन्त्र श्री राम तारक ब्रह्म-षडक्षर मन्त्रराज ही है अन्य नहीं। जो नित्य श्री राम राम राम कहा करते हैं उनकी भक्ति मुक्ति में तो कोई सन्देह हीं नहीं ॥२७-३२॥ अब सर्वश्रेष्ठ ध्यान बतलाता हूँ। परमरम्य श्री अयोध्यानगर के रत्नमण्डप में कल्पवृक्ष के मूल में अष्टदल कमलाकार रत्नजटित स्वर्ण सिंहासन पर विराजित राजरूप श्रीराम का ध्यान अथवा कौशल्या की गोद में कोटि सूर्य के समान प्रकाशित पर शीतल सौम्य कान्तियुक्त बाल विभूषण विभूषित श्रीरामजी का ध्यान करै ॥३३-३९॥ शक्ति अनुसार सोने, चाँदी आदि धातु अथवा बिल्व आदि काष्ठ के सिंहासन पर अस्त्र पार्षदादि सहित श्रीरामजी का पूजन करै। पुराण, स्तोत्र आदि का पाठ एवं वेद का पारायण करै तथा रात्रि भर भक्त मण्डली के सहित भगवच्चरित्र का गान कीर्तनादि करै। नौमी के श्रीरामपूजन के माहात्म्य का एक पुराना इतिहास कहता हूँ ॥४०-५२॥ इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

एक बार मारवाड़ देश के विभिन्न ग्रामों के पाँच महा पापी वन में एकत्र हुये। उनमें एक लुंपक नाम का तेली था। जो बैल को बिना खूब खिलाये कोल्हू में जोतता था एक दिन तेल पेरते हुये भूख से दुर्बल बैल को इतना मारा कि वह मर गया, उस दोष से राजा ने तेली को राज्य सीमा से निकाल दिया।

दूसरा शंकु नाम का तन्तुकार (कोष्ठा, जुलाहा) अपनी अनुजवधू से बलात् (व्यभिचार) करने से ग्राम से निकाल दिया गया था। तीसरा लुंठक नाम का नट डाका में पकड़ा जाकर राजसभा से बेतों की मार से अर्ध मृतक मूर्च्छित हो जाने से वन में फेंकवा दिया गया था। चौथा दुष्ट नाम का धीवर और पांचवां धर्मंहा नामका कुम्हार जिसे चोरी में पकड़े जाने से सर्वस्व जप्त करके अनेक बेंत मारकर राजा ने देश निकाला दे दिया ॥१-१३॥ वे पाँचों मिलकर अन्यत्र दूसरे राज्य में जाकर चोरी करने, डाका डालने लगे। चोरी, डाका के धन से वेश्यागमन, मद्यपान, मांसाहार और जूआ आदि व्यसन करते थे और गाय, ब्राह्मण, देवता, साधु और ईश्वर की सदैव निन्दा करते रहते थे। उस राज्य से भी निष्काशित होने पर दुखी होकर वे पांचों अनेक देशों (जनपदों) में लूटते, पाप करते संयोग से चैत्र शुक्ल नौमी के समय अयोध्याजी के समीप पहुँचे। उस समय और पुण्यात्माओं को श्री अयोध्या-सरयू स्नानार्थ जाते देखकर मौका पाने पर यात्रियों के साथ हो लिये ॥१४-२२॥ यात्रियों के परिचय पूछने पर बताया कि हम पाँचों मारवाड़ी तीर्थ यात्रा करने जा रहे हैं, फिर तो किसी यात्री ने कुछ नहीं कहा पर रास्ते भर चोरों को मौका नहीं मिला कि यात्रियों को लूटें। इस तरह अयोध्यापुरी के नगर द्वार के पास तक पहुँच गये। अयोध्याजी के विघ्न मूर्तिमान होकर नगर के बाहर घूमा करते हैं ॥२३-२७। वे विघ्न दस हैं, उनके नाम—

कामःक्रोधश्च लोभश्च दंभस्तंभोऽथमत्सरः।
निद्रा तन्द्रा त थाऽऽलस्यं पैशून्य मितितेदश ॥२८॥

काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, उद्दण्डता, मत्सर, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य और पैशुन्य (चुगुल खोरी) हैं। ये दशो मूर्तिमान विघ्न लाठी लेकर पाँचों चोरों को रोकने-मारने दौड़े। और किसी यात्री ने तो नहीं देखा पर महर्षि असित ने उन मूर्तिमन्त विघ्नों को प्रत्यक्ष देखा और उन्हें समझाकर चोरों को ताड़ना देने से विरत किया, असित ऋषि की दया से चोरों ने भी भयंकर कृति विघ्नों को देखा। डरते हुए असित ऋषि से उन दण्डधारियों का परिचय पूछा ॥२८-

३१।। असित ने बताया कि बड़े भाग्यशालियों का ही यहाँ आना होता है आप लोग बड़े भाग्यवान हैं। ये देशों भयंकर वित पापियों दो विघ्न करते हैं, मैंने उन्हें रोक दिया अब तुम लोग सविधि यात्रा करो। विधि पूँछने पर ऋषि ने बताया कि—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नु ते ।।३६।।
पापं न कुरुते यस्तु वाङ्गमनोभ्यां शरीरतः ।
यथा शक्त्या च दानेन स तीर्थ फलमश्नुते ।।३७।।

जो तीर्थ स्थान में जाकर हाथ पाँव और मन पर काबू रखता है, जिसने विद्या, तप और कीर्ति का अर्जन किया है, जो तन, मन, वचन से पाप नहीं करता और यथा शक्ति दान देता है वह तीर्थ का यथार्थ फल पाता है ।।३२-३७।। अयोध्या में पहुँचने पर स्वर्ग द्वार घाट पर क्षौर कराकर उस दिन व्रत रहे और श्रीराम जन्मभूमि का दर्शन करे तो गोहत्या, ब्रह्महत्या, गुरुपत्नी गमन आदि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीरामनौमी को नर, किन्नर, देव, गंधर्व सभी आते हैं अतः तुम लोग भी उक्त क्रम से सविधि स्नान दर्शन करो और आगे परमाश्चर्य देखो। ऐसा कहकर असित अंतर्धान हो गये। ।।३८-४२।।

इति त्रयास्त्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

चौंतीसवाँ अध्याय

महर्षि असित की आज्ञा से उन पाँचो चोरों ने प्रसन्न होकर ज्यों ही अयोध्या नगर में प्रवेश किया त्यों ही (असित की कृपा के कारण) उन्होंने सामने दिव्य वस्त्रालंकार विभूषिता चन्दन चर्चिता मूर्तिमती अयोध्या को देखा जो शंख चक्रादि धारण किये चतुर्भुजी दिव्य सुन्दरी है, समस्त तीर्थ मूर्तिमान होकर दासदासी सखी आदि के रूप में घेरे हुए सेवा में तत्पर हैं ।।१-५।। महात्मा असित के संग एवं वर प्रभाव से उन पाँच पापियों ने श्री अयोध्या पुरी का साक्षात् दर्शन किया। पाप उनसे लड़ नहीं सकते इसलिए उसका अयोध्या नाम यथार्थ है। पापियों की तरफ वह पुरी गदा लेकर दौड़ी, चोर लोग भयभीत हो

गये कि क्या यह देवी हमें मार डालेगी ? चोर लोग ऐसा विचार करते ही थे कि नील वस्त्रधारी, करालमुख, गड़ही, सरीखी नाभि, लाल-लाल खड़े शिर वाल वाले लोहे के भूषण पहने, कोई लूले, लँगड़े, काने, अन्धे, कुबड़े और को आदि अनेकों भयंकर वेषधारी पापगण उन चोरों के शरीर से निकलकर नाना शस्त्रास्त्र लेकर पुरी की ओर दौड़े, परन्तु उस अपराजिता पुरी अयोध्या के भयंकर गदा प्रहार से व्याकुल होकर भागे । पुरी के बाहर जाकर एक पीपल के पेड़ पर बैठ कर रोते हुए उन चोरों की प्रतीक्षा करने लगे ॥६-१६॥ इधर वे पाँचों पापी यात्रियों के साथ उस परम पवित्र श्री रामनौमी के दिन स्वर्ग द्वार नामक घाट पर स्नान करके श्रीराम जन्म भूमि का दर्शन करके पाप मुक्त हो गये । [उस समय श्रीराम जन्मभूमि शासक के सैनिक घेरे में नहीं थी । तब] यमराज ने अपने दोनों प्रधानामात्यों चित्रगुप्तों के कान में कहा कि इन चोरों के पापों के लेखों को मिटा दो क्योंकि सत्यापुरी (अयोध्या) ने उनके पापों का परिमार्जन कर दिया । क्योंकि उस पुरी का महात्म्य ही ऐसा है कि अयोध्योपासकी की मुक्ति हो ही जाती है । यमराज की बात सुनकर दोनों चित्रगुप्त उदास हो गये कि हम लोगों का बहुत कालीन परिश्रम व्यर्थ गया ॥१७-२४॥ दोनों चित्रगुप्तों ने एक स्वर से कहा कि अच्छी बात है अब आज से अयोध्या जाकर श्रीराम जन्मभूमि का दर्शन करने वालों के पाप का समस्त लेखा जोखा मिटा दिया करूंगा, खासकर कलियुग में । ऐसा कहकर चोरों की पाप गाथा के समस्त लेखों को नष्ट कर दिया ॥२५-२६॥

पैंतीसवाँ अध्याय

सूत उवाच—यमराज के भेजे हुए अनेक दूत नित्य पृथ्वी पर घूमते रहते हैं । उनमें कुछ दूतों ने अयोध्यापुरी के पीपल पर हुए उन पाप विग्रहों का परिचय पूछा तो पाप विग्रहों ने कहा कि माता, पिता एवं वैदिक मर्यादा त्यागी मारवाड़ के पाँच पापियों से उत्पन्न हम लोगों को उन पापियों ने बड़े स्नेह से पालन-पोषण किया था । वे अन्य यात्रियों के साथ यहाँ आये तो इस विमलापुरी ने हमको मार कर भगा दिया और वे पांचो पुरी में चले गये इसी से हम लोग

दुखी हैं। आज चैत्र शुक्ला नौमी है, नौमी का प्रभाव, सरयू स्नान का प्रभाव और राम जन्मभूमि दर्शन का प्रभाव इनमें प्रत्येक प्रभाव मोक्ष देने वाला है ॥१—७॥

इन प्रभावों से वे पांचों तो हमें छोड़कर बैकुण्ठ चले गये विमानों पर बैठकर। अतः मित्र वियोग से हम दुखी हैं। तब पाप विग्रहों को समझाते हुए यमदूतों ने कहा कि हम लोग तुम्हारी सहायता करेंगे जिससे तुम्हारे मित्र तुम्हें वापस मिल जावें। ऐसा कहकर जाकर यमराज से पापों का समस्त दुःख सुनाया। यमराज ने कहा अरे दूतो, अयोध्या, चैत्र शुक्ल नौमी श्रीराम जन्म-भूमि और भगवन्नाम की महिमा तो ब्रह्मा करोड़ों वर्ष तक नहीं कह सकते हैं। महान् से महान् पापी श्रीराम जन्मभूमि के दर्शन मात्र से मुक्त होकर मोदित होता है। जिसके ऊपर अयोध्यापुरी प्रसन्न हो जायें उसका मैं (यम) क्या कर सकता हूं। श्रीअयोध्याजी के प्रति तुम लोगों की जो दुष्ट बुद्धि हो आई है उस अपराध को क्षमा कराने स्वयं अभी अयोध्या जाता हूँ ॥८—१८॥

ऐसा कहकर यमराज भैंसे पर चढ़कर अपने भूत प्रेत गणों के साथ अयोध्या गये। नगर द्वार पर ही बाहर जाते हुए शिल्पी-सम्राट विश्वकर्मा से पूँछा कि इस समय नौमी का पर्व छोड़कर आप कहाँ जाते हैं ? विश्वकर्मा ने कहा कि जिन लोगों ने आज (श्रीरामनौमी के समय) व्रत रहकर श्री सरयू जी में स्नान किये और श्रीराम जन्म भूमि के दर्शन किये हैं उन्हें परमपद ले जाने के लिये अनेकों विमान तैयार करने जा रहा हूँ।'' ऐसा कहकर विश्वकर्मा तो वेग से चले गये और भृत्यों के सहित यमराज ने आश्चर्य में डूबते उतराते अपने महिष आदि वाहनों से उतरकर "ॐ विमलायैनमः" मंत्र बोलते हुए साष्टांग प्रणाम किया और मेघ गम्भीर वाणी से स्तुति करने लगे ॥१६—२६॥

श्रीराम मूर्ति, आद्यापुरी सत्या अयोध्या जी आपको नमस्कार है। हे मातः ! आप सदैव सरयू जी से वेष्टित, ब्रह्मादि से वंदित एवं ऋषियों से पर्युपासित हैं। हे देवि ! हे राम भक्त प्रिये ! जो महात्मालोग मानसिक ध्यान करते हुए आपकी पूजा करते हैं उनके अनेक जन्मार्जित (संचित) पाप समूह नष्ट हो जाते हैं। हे देवि ! मुनीश्वर लोग प्रणवार्थ रूप से आपका ध्यान करते

हैं इसलिए भी आपका नाम अयोध्या है। जिन पुण्यात्माओं और सूर्य वंशीय राजाओं का आप मातृ पालन करती हैं वे लोग तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर लोग भी भी जब आपकी महिमा नहीं जानते तब भला बुद्धि हीन मेरे दूतों की क्या सामर्थ्य है। हे अयोध्ये देवि ! आपको वारंबार नमस्कार करता हूँ मेरे एवं मेरे गणों के अपराधों को क्षमा कीजिये ।।३०-३७।।

ऐसी प्रार्थना पर श्री सत्यापुरी ने प्रत्यक्ष होकर यमराज से वर माँगने को कहा। यमराज ने निवेदन किया कि देवि। पीपल में स्थित चोरों के उन पापों को स्थान दीजिए। अयोध्यापुरी ने कहा कि जहाँ पर खड़े होकर तुमने आज मेरी प्रार्थना किया है इसका नाम यमस्थल (जमथला) घाट विख्यात होगा। जो कोई भी इस घाट पर कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन सरयू स्नान करेगा। उसे तुम्हारा (यम का) भय न रह जायेगा। उन पाँच चोरों के पाप जो पीपल पर मूर्तिमंत होकर स्थित हैं वे पाप विग्रह श्री रामनाम एवं रामधाम (मेरी) निन्दा करने वालों में चले जायँ। प्रातःकाल तुम्हारे रचित इस अष्टक का पाठ करने वाले मेरे वरदान से सभी अभीष्ट को प्राप्त करें। ऐसा कहकर पुरी विग्रह के अन्तर्धान हो जाने पर वे दोनों चित्रगुप्त एवं यम-गण बड़े लज्जित हुए, पाप विग्रह भी अन्तर्हित हो गये, यमुना के भाई-यम अपना घाट बनाकर दूतों को अयोध्या का महात्म्य सुनाते हुए अपने दल बल सहित अपने स्थान (यमपुरी) लौट गये ।।३८-४७।।

अगस्त्य जी ने कहा कि हे सुतीक्ष्ण। अयोध्या एवं श्रीराम नौमी का बहुत बड़ा महात्म्य है उसे पूरा-पूरा कोई कह ही नहीं सकता। इस इतिहास को कहने सुनने वाला भी भुक्ति मुक्ति प्राप्त करता है। सूत जी ने कहा कि स्वयं सुतीक्ष्ण जी से ही मैंने सुना था। इसे शठ, अतपस्वी, वेद गुरु निन्दक और पुण्यकर्म निन्दकों को नहीं सुनाना चाहिये। भगवन्निष्ठ श्रद्धा भक्ति युक्त ब्राह्मण से शूद्र पर्यन्त स्त्री पुरुष कोई हो उसे बताना चाहिए ।।४८-५३।।

छत्तीसवाँ अध्याय

शौनक जी ने कहा कि हे महाबुद्धिमान् सूतजी। भक्तिवर्द्धक, कर्णामृततुल्य,

श्रीरामजी की रहस्य कथा हमें बारंबार सुनाइये यदि हमें इसका अधिकारी पात्र समझिये तो। अनेक रामायणों में मैंने श्रीसीता चरित्र सुना परन्तु मन और कानों की भूख बनी ही रहती है। भगवान् व्यासजी से मैंने अनेकों बार श्रीरामजी का विहार, बालपन का दुखदायी विद्याभ्यास, पिता की सेवा, लोकरन्जन का कष्ट, अक्षय बन्धु स्नेह, कौमारावस्था की मृदुलालापात्मक लीलायें, युवावस्था में वनवास का कठिन दुःख, पुनः राज्यपालन आदि सुख दुख मय चरित्र में दुःख चरित्र ही का अधिकतर प्रचार है। पुराणों में साक्षात् नारायणावतारी श्रीराम जी का ऐश्वर्य तो बहुत बार सुना है परन्तु श्रीराम जी की शिकार आदि माधुर्यामृतमयी पौगण्ड, एवं कैशोर लीलायें प्रायः कम ही सुनी हैं अतः कृपा करके माधुर्य लीलायें ही कुछ कहिये। सूत जी ने कहा कि ऐसा प्रश्न करके तो आपने मेरे ऊपर ही बड़ी कृपा की। अब मैं आपके पूछे गये प्रश्न को ही कहता हूँ॥१—१०

जिह्वालब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत।
लब्ध्वादि मोक्षनिः श्रेयसं सनारोहति दुर्मतिः॥११॥

जिह्वा में वाक्योच्चारण शक्ति पाकर जो मनुष्य कीर्तनीय श्रीमन्नारायण के नामों का कीर्तन नहीं करता वह दुष्ट बुद्धिवाला मोक्ष की सीढ़ी पाकर भी नहीं चढ़ता। इससे मैं परमात्मा का ही चरित्र कहा करता हूँ। श्रीराम जी आत्माराम होते भी परिजन पुरजन को आनन्द देने के लिये अनेक चरित्र किया करते थे। श्रीराम जी को देखकर द्विजगण आशीर्वाद देते, स्त्रियाँ कभी गोद में लेकर खेलातीं कभी लोरियाँ गातीं और चारों भाई श्रीराम जी बालसखाओं के साथ आँगन में खेलते, कभी किसी सखा के कन्धे पर चढ़ते, कभी दौड़ते कभी आँगन में घूम-घूम कर किलकारी मारते हुए खाते स्वर्ण सूत्रमय मणि रचित अनेक वस्त्राभूषणों से सुसज्जित चारों भाई बाहर जाकर खेलते हुए बालबृद्ध सभी पुरवासियों को अमित सुख देते। ॥११—२४॥

एक बार जेष्ठ के महीना में श्रीराम जी के माता के महल से निकलने के पहले ही, राजा दशरथ जी सरयू चले गये थे। बाहर पिता को न देखकर

श्रीराम जी ने सखाओं से कहा चलो पिताजी को ढूँढ़ें। द्वारपालों ने बताया कि महाराज नजदीक के ही घाट पर सरयू जी गये हैं। क्या आप सब वहाँ जायेंगे ? यह सुनकर रामजी बड़े जोर से हँसे और जिस बालक के कन्धे पर सवार थे उसे एँड़ लगाते हुए जल्दी चलो कहने लगे। बालकों सहित जाते हुए मार्ग में नारी नर देख कर परमानंदित होते हैं। आगे बढ़कर सेवकों ने महाराज से राजकुमारों का आना बताया। महाराज भी संध्याकर चुके थे, चारों कुमार जाकर राजा के गोद में बैठ गये। राजा ने स्वर्ण सूत्र खचित कालीन पर बालकों को बैठाकर श्री वशिष्ठ जी को दण्डवत करके कुमारों को सिखाया कि गुरु जी को ऐसे दण्डवत करो। गुरु जी को दण्डवत प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त करके चारों बालकों को अपने आगे बैठाकर हाथ जोड़कर श्री सरयू जी की प्रार्थना करने लगे। २५—३७॥ इतिषट् त्रिंशोऽध्याय: ॥३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

दशरथ उवाच—ब्रह्मादि समस्त देवताओं एवं नारदादि ऋषियों से बन्दित, हे वशिष्ठ तनये देवि सरयू जी नमस्कार है। जगत के पाप हरने आप मानस से आयीं हैं पुण्यात्मा लोग ही सदा आपकी सेवा किया करते हैं। जो मत्सर रहित होकर आपका नाम रटते स्मरण, दर्शन एवं जलपान करते अथवा आपके तीर पर शरीर त्यागते हैं। उनका समस्त पाप नष्ट हो जाता है वे मुक्त हो जाते हैं। आप मनु आदिक सभी पूर्वजों से मानित हैं आप श्री हरि के नेत्र से निकली हैं, आपके तीरपर सभी तीर्थ चारों युग में निवास करते हैं। जब वेद तक आपकी महिमा निरंतर कहते हुए भी पार नहीं पाते तो मुझ मनुष्य की क्या शक्ति। हे वाशिष्ठी देवि ! आपको नमस्कार है, आप प्रणतजन की रक्षा कीजिये ॥१—८॥

ये बालक आपकी शरण में खेलते हैं इनकी रक्षा करते रहिए। इस प्रकार प्रार्थना करके प्रत्येक पुत्रों के हाथ से एक-एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा का दान करवाया। राजा की प्रार्थना सुनकर कामरूपणी श्री सरयू देवी दिव्य वस्त्राभरण से अलंकृत होकर कुमारों के दर्शनार्थ बाहर आकर कुमारों के पास खड़ी हो गईं। राजा ने बालकों सहित पाद स्पर्श पूर्वक प्रणाम किया, आशीर्वाद देकर

सरयू जी ने राम जी को गोद में बैठा लिया और श्रीराम के गले में मोतियों की माला पहना कर राजा से कहा कि ये चारों बालक प्राणी मात्र के इष्ट हैं और मेरी गोद में तो सदैव ही रहते हैं तुम ज्ञान दृष्टि से देखो। तुम्हारी की हुई प्रार्थना (अष्टक) से जो मनुष्य मेरी प्राथना करेंगे उन्हें समस्त तीर्थ स्नान का फल प्राप्त होगा। सरयू जी की गोद में तो चारों कुमारों को देखकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ ॥६—१७॥

राजा ने प्रणाम करके पूंछा कि देवि! आप कैसे उत्पन्न होकर वाशिष्ठी कहलाई और हमारे पुत्रों को गोद में कैसे लिये हैं? तब श्री सरयू जी ने कहा कि जब भगवत्कमलनाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तो भगवदाज्ञा से उसी कमल पर बैठकर कुम्भक में व्यवस्थित हो दिव्य सहस्र वर्ष तक तप किया तब गरुड़ारूढ़ भगवान ने प्रगट होकर ध्यान मग्न ब्रह्मा का स्पर्श किया। उस सुखद स्पर्श के होते ही ब्रह्मा ने कुम्भक त्याग कर चतुर्भुज श्रीमन्नारायण की रूपमाधुरी को देखते चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। उस समय ब्रह्मा के ऊपर प्रसन्न होने से श्रीहरि के नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहा था, ब्रह्मा ने उस आनन्दाश्रु को अपने कमण्डलु में रखकर चारों मुख से स्तुति किया जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा को वरदान देकर श्री हरि अन्तर्धान हो गये ॥१८—२६॥

ब्रह्मा ने भी उस नेत्र जल को ब्रह्मद्रव जानकर (सृष्टि रचना के पश्चात्) मानसिक संकल्प मात्र से एक सरोवर की रचना करके उसी में उस ब्रह्मद्रव को स्थापित कर दिया। बहुत काल के बाद तुम्हारे पूर्वज महाराजा श्री इक्ष्वाकु की प्रार्थना पर महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मा से किसी नदी के लिए प्रार्थना किया। तब ब्रह्मा ने उस भगवन्नेत्रज आनन्दद्रव को मानसर से प्रवाहित कर दिया। वही श्रीमन्नारायण नेत्रोद्भवा मैं वशिष्ठ महाराज के पीछे-पीछे यहाँ आई और तभी से मैं सच्चिदानन्द परब्रह्म श्रीरामजी को गोद में धारण किये रहती हूँ। तुम्हारे पूर्व तप से प्रसन्न होकर हमारे प्रभु तुम्हारे चार पुत्र बने हैं। इस प्रकार अपनी कथा सुनाकर देवी सरयू जी अपनी धारा में अन्तर्धान हो गई। राजा दशरथ प्रसन्नतापूर्वक घर गये। रमानाथ श्रीराम जी का चरित्र स्वयं रामजी ही पूरा-पूरा नहीं कह सकते तो भला मैं (सूत) कैसे कह सकता हूँ। ॥३०—४५॥ इति सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

अड़तीसवां अध्याय

हे शौनक ! चारों भाइयों के प्रतापी, शत्रुनाशक, प्रतापाराग्य, युधिष्ठिर, सुकर्मा सुष्ठुरूप, जय, विजय, सुकण्ठ, दीर्घवाहु, सुशिरा, चारुचन्द्र अतिविक्रमी चन्द्रभानु, रिपुवार, अरिजित, शील, सुशील, मनोहर, गजगामी सबलाश्व, हरिदश्व. और वीरमयी आदि हजारों सखागण राजप्रांगण में नित्य खेलने आते ॥ १—५ ॥

कौशल्या के महल में जो सैकड़ों सुआर (रसोइया) नियुक्त थे उनमें परस्पर होड़ लगी रहती थी कि रामलला जी के लिये पहले मैं रसोई तैयार करूँगा। वे रसोइयागण खूब तन्दुरुस्त स्वच्छ वस्त्र एवं बहु मूल्य भूषण धारण किये रहते थे। चारों कुमार सोने के तार से मणि माणिक्य जटित पनहीं धारण किये बहु मूल्य वस्त्राभरण से सुसज्जित होकर खेला करते थे ॥६–११॥

अपने अनन्त पूर्व पुण्य के प्रभाव से जिस किसी ने श्रीरामादि चारों कुमारों में किसी एक का भी दर्शन कर लिया उसे लेने ब्रह्म लोक से ऊपर भगवद्धाम से श्रीहरी के पार्षद आया करते हैं। बाल सखाओं के साथ गेंद लिये हुए श्री रामादि कुमार गण कभी आँगन में एवं कभी अयोध्या की गलियों में खेलतें हैं। कभी गेंद कभी गोली कभी भौंरा कभी चक डोरी और कभी पतंग (गुड्डी) आदि खेलते हैं। प्रत्येक खेल में सभी बालक ऐसे तन्मय होकर आनंद मग्न हो जाते हैं कि भोजनादि की भी सुधि नहीं रहती। कोलाहल पूर्ण कुमारों का खेल देखने के लिये अनेक नर नारियों का समूह चारों ओर से घेर कर आनन्द लेता और प्रशंसा करता ॥१२–१६॥

नाना जन्मों के पुण्य समूह के उदय होने से ही दिव्य शरीरी अयोध्या वासी नर नारी गण प्राण प्रिय राज कुमारों की बाल क्रीड़ा देख कर कृतार्थ होते हैं। स्त्रियाँ गुरुजनों की लाज संकोच छोड़कर आरंभिक कार्य को अधूरा ही छोड़कर शिथिल अंग एक टक चारों राज कुमारों को ही देखने लगतीं जब कि राजकुमार उनकी गली से खेलते हुए निकलते हैं। श्रीरामजी अपने सखाओं के साथ हँसते-हँसाते नगर में अनेक तरह के खेल खेलते रहते हैं। श्रीराम जी का

गेंद जब दूर चला जाता है तब सभी बालक गण मैं लाऊँगा मैं लाऊँगा का कलरव मचाते हैं। गेंद के कारण श्रीराम जी बार-बार पृथ्वी का स्पर्श करते हैं। खेल से परिश्रांत हो थक कर जब घर आते हैं तब माता-पिता गोद में उठा लेते हैं मस्तक सूँघते मुख चुम्बन करते हुए अनेक प्रकार से लाड़ प्यार करके आनन्द लेते हैं। ॥२०-२६॥

कभी-कमी जो-जो खेल नगर में खेलते हैं वही वही खेल पुनः विशाल राज प्रांगण में राजा रानी के सामने खेलते हैं। इस प्रकार दिन को क्षणवत व्यतीत करके रात्रि में माताओं से लालित होकर दुग्धफेनवत् कोमल कलित श्वेतोपधान मयी शय्या पर शयन करते हैं। प्रातःकाल होते ही पुनः बालक गण खेलने के लिये श्रीराम जी के पास पहुँच जाते है ॥ ३०—३४॥ इत्यष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

एक बार चारों भाई छोटी-छोटी धनुही एवं तीर लिये बालकों के साथ सरयू जी के किनारे लक्ष्यवेध का खेल खेल रहे थे अर्थात् दूर आमने-सामने से दो बालक तीर चलाते और मार्ग में दोनों तीर आपस में टकराकर गिर पड़ते। कभी एक तीर ऊपर चलाते जब तक वह तीर नीचे आये तब तक दूसरे तीर से उसे बींध देते। कभी किसी राजकुमार का लक्ष्य चूकता नहीं था। कभी खेल में बालक गण श्रीराम जी को मध्यस्थ बनाते कभी भरतादि को कभी किसी सखा को। इस प्रकार खेल में मग्न होकर बालक गण भोजन करना घर जाना आदि भूल जाया करते थे ॥१—६॥

मध्याह्न कालिक भोजन के समय जब राजा पुत्रों को बुलवाते तब कंचुकि गण तीनों महारानियों के पास जाकर प्रार्थना करते हैं कि बिना कुमारों के महाराज भोजन नहीं कर रहे हैं। तब महारानियां कभी रथ कभी पालकी आदि सरयू किनारे भेजतीं कि जल्दी से कुमारों को लाओ। बालक वृन्द कभी तो सवारी से चले आते और कभी पांव पयादे टहलते हुये धीरे-धीरे कभी दौड़ते उछलते कूदते आते और सवारी ले जाने वाले कुमारों के पीछे-पीछे आते। ॥ १०—२१॥

मार्ग में दौड़ते हुए कुमारों को देखकर नागरिक लोग राज सेवकों से कारण पूछते और समाचार जानकर प्रसन्न होते। राजकुमार पिता के पास भोजनशाला में जाकर पहले तो अपने-अपने लक्ष्य की बात बतलाते, कभी कहते लक्ष्य पर जाते मेरा तीर जरा-जरा हिलता है इसलिये मुझे वजनदार बड़ी-बड़ी तीरें बनवा दीजिये। कोई कुमार कहता मेरा धनुष लप जाता है इसलिये मुझे यह सोने का धनुष नहीं चाहिये बल्कि जैसे पिता जी आपका धनुष बारासिंहा के सींग का है वैसा ही सींग का धनुष मेरे लिये बनवा दीजिये कोई कुमार कहते मेरी तलवार हल्की है मैं तो बड़े बाबा रघु जी वाली वही तलवार लूँगा जो अस्त्रागार में रखी है। कोई कभी अकेले वन में सिंह मारने जाने की आज्ञा माँगते। राजा प्रसन्न होकर सबकी फरमाइश पूरी करने का आश्वासन देकर पुत्रों सहित भोजन करके सविधि ताम्बूल सेवन करते हुए विश्रामार्थ अन्तःपुर पधारते और श्री रामादि चारों भाई कभी पिता के साथ विश्राम भवन जाते कभी खेलने बाहर भग जाया करते ॥ २२–३० ॥

इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चालीसवाँ अध्याय

राजकुमार गण नित्य बाहर खेलने चले जाते हैं इसलिये रानियाँ एवं महल की दासियाँ खेल देखने को तरसा करती हैं अतः कुछ ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे कि यहीं महल के प्रांगण में ही खेलें। ऐसा विचार कर एक दिन सायकाल के समय जब चारों भाई खेल कर आये और माता जी के पास भोजन करके शीघ्र ही सो गये तब तीनों पटरानियों के भी बिना जनाये ही श्री राम जी के धनुष तरकस तलवार और गेंद आदि खेलने वालों सामानों को चुराकर अन्य रानियों के घर में अलग-अलग रख दिया ॥ १—८ ॥

प्रातःकाल उठने पर नित्य क्रिया से निवृत होकर बड़ी माता कौशिल्या जी के पास बैठे चारों भाई माता के हाथ से भोजन कर रहे थे तभी आँगन में बाल सखाओं की भीड़ एकत्र हो गई। बालकों को देखते ही लक्ष्मण कुमार तो चट पट हाथ मुँह धोकर तैयार हो गये। यह देखकर श्रीराम जी ने खाते-खाते लक्ष्मण को अपना धनुष तरकस, तलवार लाने और घोड़ा सजवाने को कहा।

लक्ष्मण ने बालक्रीड़ागार में जाकर तीनों भाइयों के सामानों को तो देखा परन्तु श्रीरामजी के ही सामानों को न पाकर श्रीराम जी से कहा। प्रभु ने भी जानते हुये भी परिजनानन्दनार्थं नर नाट्य करते हुये माता से पूंछा। माता ने कहा बेटा मैं तो नहीं जानती तुम अपनी धन्याधात्री से पूँछो अथवा मझली माता कैकेयी अथवा अथवा छोटी अम्बा सुमित्रा से पूंछो। पूंछने पर दोनों माताओं ने कहा बेटा हम सब तो नहीं जानतीं। पर नहीं मिलता तो जाने दो अभी-अभी अस्त्रागार से रत्न जटित स्वर्ण निर्मित नये अस्त्र-शस्त्र मंगवाये देती हूँ ॥९—२८॥

परन्तु राम जी सब के आनन्द वर्द्धनार्थ अन्य माताओं से किसी के गले में झूलकर किसी का हाथ खींचते हुये आदि नाना प्रकार की बाल चेष्टायें करके माताओं को तंग करते हुये पूँछने लगे। जानते हुये भी आनन्द में मग्न माताओं ने नहीं बताया। तब तक मन्थरा दिखाई पड़ी। २३–३२॥

सामो वाचतदारामं पूर्वं वैरंच चिन्तती।
चुल्यांते रामवर्तेते धनुर्वाणौ विनिश्चतम् ॥३४॥

पूंछने पर पूर्व वैर को स्मरण करती हुई मन्थरा ने कहा तुम्हारा धनुष बाण चूल्हे में जलता है।—

यह सुनकर क्रोधित हो मन्थरा को पीटने के लिये दाहिने हाथ में कोड़ा लेकर कहने लगे कि इसी ने जरूर धनुष बाण चुराया है। यह पापिनी हम लोगों का सुख नहीं देख सकती अतः इसे अवश्य ही कोड़े से मारना चाहिये। इस तरह लक्ष्मण जी तो डाँटते ही थे शत्रुघ्न जी अपनी कपड़े की गेंद मन्थरा को मार कर भगे और सब बालक गण ताली बजाकर हँसने लगे। परन्तु श्रीराम जी और भरत जी अपनी-अपनी टोली के बच्चों को मन्थरा की हँसी उड़ाने से मना किया। तब मन्थरा लज्जित होकर मझली महारानी कैकेयी जी के घर में भाग गयी। इतने में श्रीरामजी की धात्री धन्या जी ने खोज कर धनुष बाण और तलवार ला दिया, जिसे पाते ही सब बालगण हंसते हुये सरयू तट चले गये ॥३५–४२॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

इकतालीसवां अध्याय

सरयू तट पहुँचते ही एक मल्लाह ने आकर प्रार्थना किया कि हे राजकुमार इधर (दक्षिण ओर) खेलने दूर मत जाइये क्योंकि थोड़ा आगे ही एक बड़ा भयंकर पागल भैंसा गया है। उसे हटाने की प्रार्थना करने हम लोग चक्रवर्ती जी के पास जाने वाले हैं। धीवर की बात सुनकर अनेक बालक तो आश्चर्य में आ गये और रामजी ने वहीं चलने के लिये भरत लक्ष्मण आदि से इशारा किया, जिससे सभी लड़के धनुष टंकारते उधर ही दौड़े ॥ १–६ ॥

धनुष टंकार का शब्द सुनकर वह गर्वीला ग्रानडील भैंसा बड़ी-बड़ी भयंकर एवं लाल आँखों से घूरता हुआ पूँछ को ऊपर उठाकर अपनी विशाल पैनी एवं पुष्ट सींगों से पृथ्वी खोदने लगा। लड़के आपस में कोलाहल मचाने लगे कि जैसे वह भैंसा सामने पड़ेगा मैं बाण से बींध दूँगा, मैं भाला से मारूँगा, मैं तलवार से मारूँगा, मैं खाली हाथों से लड़कर उसकी दोनों सींगें उखाड़ लूँगा। बालकगण ऐसा कहते ही थे कि वह भैंसा श्रीराम जी को मारने दौड़ा। तब जैसे कोई लकड़ी से पशु हाँकता है उसी तरह रामजी ने थोथी तीर से डंडा सरीखे उसके सिर पर प्रहार किया। तीर के स्पर्श होते ही वह भैंसा दिव्य रूप हो गया ॥ ७-११ ॥

कन्दर्प सदृशाकारो योषिताँ हृदयंगमः।
किशोरः श्यामलः स्रग्वी मुकुटी कुंडलान्वितः ॥१२॥
कटि सूत्रेण हारेण अंगदेन विभूषितः।
यथा रूपं हि भक्तानां रामस्य परमात्मनः ॥१३॥

युवतियों को प्रिय लगने वाला काम के समान सुन्दर, किशोरावस्थापन्न श्यामसुन्दर विग्रह, माला, मुकुट, कुण्डल करधनि, हार एवं अंगद, (बाजूबन्द-विजायठ) आदि भूषणों से शोभित जैसा कि श्रीराम भक्तों का दिव्य अथवा नित्य रूप हुआ करता है। वैसा रूप प्राप्त करके उस विल्व नामक गंधर्व ने भगवच्चरणों में साष्टांग प्रणाम करके अनेक तरह की स्तुति प्रेम विह्वल गद्गद् स्वरों में किया। उसकी स्तुति सुनकर सर्वज्ञ रामजी ने उससे भैंसा होने का कारण पूछा तब विल्व ने कहा ॥ १२–२४ ॥

हे प्रभू ! मैं अपने गायन विद्या, स्वर रूप और यौवन के घमण्ड में भरा हुआ किसी बात में किसी को अपने तुल्य न समझता हुआ प्रत्येक यज्ञों में अनेक गन्धर्वों को परास्त करता हुआ स्वर्ग और सत्य लोक में उद्धत होकर घूमने लगा। एक बार कुरुक्षेत्र में आपके पूर्वज वैवस्त मनु के यज्ञ में जाकर अनेकों गन्धर्वों को जीतकर गर्व में फूल गया कि देव दैत्य मानव में कोई भी मेरे समान कहीं भी गान वाद्य का गुणी नहीं है ॥ २५–३२ ॥

तदातु नारदो योगी वीणा वादन तत्परः ।
मां निर्जेतुं मनश्चक्रे क्षेमाय मम चानघः ॥३३॥

उसी समय नित्य वीणा वादन में तत्पर सर्वथा निष्पाप योगिराज श्री नारद जी ने मेरे कल्याण के लिये मुझे जीतने का विचार किया। मैंने वहाँ जो कुछ गाया था देवर्षि जी ने उसे वैसे ही शास्त्रीय-लय और स्वर से गा दिया। तत्पश्चात् जो दिव्य गान नारद जी ने गाया मैं उसकी छाया भी न छू सका। महान् पराजय होने पर भी मैं उनकी प्रशंसा न करके अपने अनुयायियों में उनकी (साधुवेष की) हँसी उड़ाने लगा। तब हँसते हुये देवर्षि ने कहा कि अरे बिल्व तूने मेरे गान तत्व को तो समझा ही नहीं प्रत्युत जैसे भैंसा अपने बल गर्व से दर्पित रहता है गान तत्व को नहीं समझता वैसे अपने रूप एवं वेष-भूषा के दर्प में पड़ कर मेरे साधु वेष की हँसी उड़ाता है, इसलिये जा तू भैंसा हो जा। सारी सभा तो मेरे अज्ञान पर हँसती थी श्राप सुन सब स्तब्ध रह गये। गर्व खर्व हो जाने से मैंने भी मुनिराज के चरणों पर गिर कर श्रापोद्धार का समय पूछा ॥३३–३६॥

देवर्षिजी ने बताया कि त्रेता में जब स्वयं नारायण ही दशरथ नन्दन होकर अपने बाण की व्यष्टि (छड़ी) से तुम्हारे शिर पर प्रहार करेंगे तब महिष रूप छोड़कर तुम गन्धर्व रूप में आजावोगे। सो हे प्रभू आज देवर्षिजी की कृपा से मुझ पापी को साक्षात् नारायण आपका दिव्य दर्शन प्राप्त हो गया और मैं निष्पाप होकर दिव्य रूप पा गया। अब अपने श्री चरणों की भक्ति और प्रदान कीजिये। श्रीरामजी ने कहा कि जो चाहो सो माँग लो ॥ ४०–४४ ॥

मदीयं दर्शनं कृत्वा न नरो याचते परम् ॥४५॥

मेरा दर्शन कर लेने पर फिर अन्य से नहीं माँगना पड़ता। बिल्व ने प्रार्थना किया कि यह स्थान जहाँ आपने मेरा उद्धार किया है मेरे आपके नाम से सयुक्ताख्यात हो। श्रीरामजी ने कहा एवमस्तु आज से इस क्षेत्र का नाम बिल्वहरि प्रख्यात होगा और तुम बहुत काल तक स्वर्ग सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त करोगे। और वैशाख अमावश्या (आज के दिन) को यहाँ की वार्षिकी यात्रा हुआ करेगी। बैशाख अमावश्या के दिन पितृगणों को पिण्ड दान देने से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। बिल्व स्वर्ग गया और श्रीराम जी ने अपनी बाल मण्डली सहित राज महल आकर महाराज से कहकर उस क्षेत्र का नाम बिल्वहरि घोषित कराया ॥४५-५३॥ इत्येकचत्वारिंशोऽध्यायः।

बयालीसवाँ अध्याय

एक बार श्री रामजी ने बन्धु सखाओं के साथ वन में बध्य जन्तुओं शेर, चीता, बाराह, गैंडा आदि का शिकार करते हुये एक वल्मीक (दीमकों द्वारा बनाई दीवारनुमा भीटा—छोटा टीला) देखकर कौतुक पूर्वक उसे हाथ का हल्का-सा धक्का दिया। वैसे ही उस वल्मीक के भीतर से दिव्य बस्त्राभूषण से शोभित एक सुन्दर युवा पुरुष बाहर निकला। श्री रामजी ने पूँछा—भाई! बल्मीक में छिपकर रहने वाले आप कौन हैं? यदि उचित समझें तो बतलायें ॥ १-१० ॥ प्रणाम करके पुरुष ने कहा कि मैं हिमालय की तराई का रहने वाला डिडिर नामक किरात हूँ। एक बार तीर धनुष लिये अहेर करते हुये बन्य पशुओं के पीछे-पीछे दौड़ते-दौड़ते अपनी मूर्खतावश अपने निवास-स्थान से तेईस योजन (लगभग तीन सौ मील) निकल गया। दूसरे दिन संध्या समय थककर मार्ग में गिर पड़ा। संयोग से पचीस साधुओं की एक टोली वहीं आकर टिक गई। रात्रि भर उनका सत्संग भजन कीर्तन सुनता रहा। प्रातःकाल वे लोग कृपा करके मुझे भी गाँव में लेते गये। वहाँ सन्तों ने शालिग्राम पूजन किया। रसोई बनाकर नैवेद्य अर्पण किया और कृपा करके मुझे भी श्री पादतीर्थ (चरणामृत) एवं यज्ञोच्छिष्ट (प्रसाद) दिया। सन्तों के दर्शन भगवच्चरणमृत प्रसाद सेवन से मेरा मन बहुत कुछ शुद्ध हो गया। फिर सन्तों ने मुझसे कहा

कि तृणाहार करके जीवन यापन करने वाले प्राणियों को मार कर क्यों पाप लेते हो ।। ११–१९ ।।

परमांसेन ये पुष्टास्तेषांपीड़ायमालये ।
भविष्यति न सन्देहो पापिना नरक गामिनाम् ।।२०।।

दूसरे का मांस खाकर अपने शरीर को पुष्ट करने वाले निश्चय ही नरक गामी होते हैं। सन्तों की बात से मुझ (डिंडिर) में ज्ञान हो गया और मैं भी उन्हीं के साथ तीर्थ यात्रा करते हुये अयोध्या तक आया। सन्त गण तो सरयू स्नान तीर्थ दर्शन आदि तीन दिन में करके चौथे दिन चले गये। परन्तु मेरा मन यहाँ लग गया। मैं ध्यान करते हुये भगवत्कृपा से समाधिस्थ हो गया। मेरे शरीर के ऊपर वल्मीक कब लगा मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है। साक्षात् परब्रह्म आदि नारायण, आपके कर स्पर्श से मैंने किरात से दिव्य रूप प्राप्त कर लिया। आप ही समस्त सृष्टि के कर्ता-धर्ता हैं। आपके दर्शन का परम लाभ उन्हीं सन्तों की कृपा के कारण ही हुआ है। जैसे गंगा पूर्ण समुद्र में जाती है वैसे मेरा मन सदैव आपके चरणकमलों में रहे ऐसी कृपा कीजिये ।।२०–३८।।

यत्सुखं तव भक्तानां संगमेन भवेत्क्षितौ ।
न तेन तुलयेमोक्षं स्वर्गमिन्द्रपदं तथा ।।३९।।

पृथ्वी पर आप (श्री हरि) के भक्तों की सत्संगति से जो सुख होता है उसकी तुलना में मोक्ष, स्वर्ग और इन्द्रपद नहीं आ सकते। देव प्रार्थना पर आप भू-भार उतारने आये हैं। आपके दर्शन से मुझे इस समय त्रैकालिक ज्ञान हो गया है। आपके श्री चरणों में बारम्बार प्रणाम है। अब मुझे आज्ञा दीजिये। वह श्रीराम जी की आज्ञा से दिव्य विमान पर बैठकर त्रिपाद्विभूति साकेत को गया और सखाओं सहित श्रीराम जी नगर को आये ।।३९–५८।।

।। इति द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२ ।।

तैंतालीसवाँ अध्याय

एक दिन श्री राम जी प्रातःकाल वन-विहार के लिये जल्दी ही तैयार हो गये। इसी से प्रतापी, प्रताप्राग्य नीलरत्न, वीरभद्र, महाबल, सबलोश्व,

हरिदश्व, शोणाश्व, हरिदश्वक चन्द्रभानु, चन्द्रचारु, रिपुवार, रिपुञ्जय, भद्राश्व जयन्त, सुबाहु, मतिमान और अन्यान्य शिकारी मित्रों को बुलवाया। शिकारी कुत्तों के शिक्षक, बाजों के शिक्षक, कुलिगों जुर्रा, बरही, आदि के शिक्षक सिंह शिक्षक, चीता शिक्षक और जालधारी आदि आखेटकीय लोगों को उनके सामान सहित बुलवाया। वे सब आकर राजद्वार पर उपस्थित हो गये ॥१-६॥ हाथी, घोड़े, रथ, और ऊँट आदि के अनेकों सवार, पाश, भुसुण्डि (बन्दूक) एवं धनुर्वाणधारी वीरगण आ आकर राजप्रांगण में प्रतीक्षा करने लगे, तब तक श्री राम जी भी भाइयों एवं मित्रों सहित शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो माता-पिता से आज्ञा लेकर उच्चैश्रवाके समान महाबली लाल रंग के श्याम कर्ण अश्व पर आरूढ़ हुए। उस समय उन घोड़ों पर हरे रंग के सब साज सजे थे और सभी लोग हरे रंग की ही पोशाक धारण किये थे ॥ ७-१७ ॥ इस प्रकार समस्त शस्त्रास्त्र एवं दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राजमार्ग से निकले तो सभी नागरिक गण दर्शन से कृतकृत्य होकर राजा एवं रानियों की प्रशंसा करते हुये अपने-अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे कि साक्षात् नारायण—चारों भाइयों के दर्शनों से हम सब अवधवासी धन्य हैं ॥१८-२९॥ सड़क पर हर्म्यस्थित स्त्रियाँ गवाक्षों से लाजा (धान की खील) एवं पुष्पों की वृष्टि करते हुये कहती हैं कि हे प्राण प्रियतम रघुनन्दन आप आखेट खेलकर जल्दी ही लौट आइयेगा नहीं तो सायंकाल होते ही हमारे प्राण आपके पास वन में प्रयाण कर जायेंगे। इसी बीच में निषादाधिपति गुह भयंकर शस्त्रास्त्र धारी पाँच सौ निषाद वीरों के साथ आकर उपस्थित हो गया। महाराज दशरथ जी ने इसे राजकुमारों के शिकार शिक्षार्थ नियुक्त किया था। अपने सेवकों सहित गुह ने श्री राम जी को प्रणाम किया। श्री राम जी प्रेम पूर्वक निषादाधिपति का हाथ पकड़ कर बोले कि बड़ा अच्छा हुआ तुम आ गये अब हमें ठीक से शिकार शिक्षा देना ॥३०-३९॥ गुह ने कहा कि आप तो ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड रचना की शिक्षा देते हैं आपको कोई क्या सिखायेगा तो भी हमें लोक व्यवहार का पालन तो करना ही पड़ेगा। तब श्री राम जी ने हीरों के कण्ठा एवं रत्न जटित स्वर्ण खचित जीन और लगाम से युक्त श्याम रंग का अश्व किशोर (बछेड़ा) अपना वस्त्र तथा स्वर्ण मुद्रा पूर्ण

कलश बखशीश देखकर निषाद गुह को अपनी अन्तरंग मित्र-मंडली में शामिल कर लिया। तत्पश्चात् प्रस्थान का डंका बजा तो आगे-आगे ध्वजाधारी सैनिक उनके पीछे महाबली निषाद गण, तब दुंदुमी वादक, तब बन्दूकधारी पैदल, तब घोड़सवार तब रथ, तब ऊँट और तब हाथी चले। दस हजार घोड़े, एक हजार रथ, पाँच सौ ऊँट, एक सौ हाथी और बीस हजार पैदल सेना सहित नगर से दूर जाकर तमसा किनारे पड़ाव पड़ा। सैनिक गण घोड़ा नचाते गज युद्ध आदि अनेक वीरोचित क्रीड़ा करने लगे ॥४०–४९॥ इति त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥४३॥

चवालीसवाँ अध्याय

तमसा तीर निवास करके दूसरे दिन सेना निषाद गुह के पथ-प्रदर्शकत्व में घोर जंगल में आगे बढ़ी जहाँ हिंसक जंगली पशुओं का निवास प्रचुर मात्रा में था। वहाँ जाकर गुह ने बताया कि हे राजकुमार! यह बड़ा पवित्र वन है यहाँ पापी मनुष्य टिक नहीं सकते। इस वन में जहाँ अनेक अजगर, सिंह व्याघ्र, चीता आदि हिंसक पशु है वहीं पालने लायक रुरुमृग गवय आदि पशु नाना पक्षी एवं दर्शनीय वृक्ष लता गुल्मादि भी खूब हैं। यहाँ सिंह बाघादि के शिकार से आप बड़े प्रसन्न होंगे ॥ १–१३ ॥ श्री राम जी ने कहा कि जालधारी अपने जालों से और श्वानपाल लोग कुत्तों के द्वारा पालनीय पशु खरगोश, हरिण, बारासिंहा आदि पकड़े और हम लोग हंकवा से पता लगने पर सिंह, बाघ, गेंडा, चीता आदि का शिकार करेंगे। शिकारी कुत्तों और अन्वेषकों के वन में प्रवेश करते ही सभी वन्य पशु झुन्ड के झुन्ड माडव्य ऋषि के आश्रम पर जाने लगे। यह देखकर परमदयालु मुनि शिष्यों सहित राजकुमार श्रीराम जी के शिविर की तरफ आये ॥ १४–२४ ॥ दूर से मुनि को देखते ही घोड़े से उतर कर श्रीराम आदि सभी ने चरण स्पर्श पूर्वक मुनि को प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर स्वादिष्ट एवं सुपक्कवन्य फलमूल अर्पण किया। श्रीराम जी ने उन्हें श्रद्धापूर्वक लेकर शिर से स्पर्श कराकर सेवकों को देकर पूछा ॥१४–२४॥ हे महामुने आप के आश्रम पर सभी प्रकार से कुशल तो है? ऋषि ने कहा हे नृपेन्द्र नन्दन तुम्हारे संरक्षकत्व में सभी तरह से कुशल ही है, परन्तु अब मुझ पर कृपा करके

अपने अहेरियों को मेरे आश्रम के आसपास तक आखेट करने से मनाकर दीजिये। यहाँ से दक्षिण बालुका नदी को पार करके आगे पाप नाशिनी गोमती जी के किनारे गहन बन में क्रीड़ा करने जाइये। मुनि की आज्ञा शिरोधार्य करके मुनि के चरणों में शिर से प्रणाम करके गुह प्रदर्शित मार्ग से दूसरे वन में श्रीराम जी ने प्रस्थान किया। उस वन की वासन्ती शोभा देखकर सभी राजकुमार बड़े प्रसन्न हुए ।।२५–३३।। इति चतु चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४४ ।।

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीराम जी की आज्ञा पाकर विदूषक ने काव्यमयी भाषा में वन की वासन्तिक छटा का वर्णन करना शुरू किया कि—आपको काम के समान जानकर ऋतुपति बसन्त रंग-बिरंगे फूलों को लेकर आपकी पूजा करने आया है। भगवान सूर्य चक्रवाकों पर कृपा करके मलयादि को त्याग कर हिमालय पर जाते हैं अर्थात् दक्षिणायन से उत्तरायण हो गये। शीत कम होने से दिन का प्रातः-काल भी रमणीक हो गया। बसंतागम में प्रथम पुष्पों, पल्लवों का जन्म हुआ पश्चात् पेड़ों पर कोकिल एवं फूलों पर भ्रमर गण कूजने एवं गूंजने लगे। काम जयी मुनियों के मन को कँपाने के लिये ऋतुराज धीरे-धीरे वनस्थली में उतर आया है। जैसे दूती नायक-नायिका को परस्पर आकृष्ट कराती है इसी तरह आम्र मंजरी भी भ्रमर और कोकिलों को मत्त बनाती है ।। १–१० ।।

धन से दुःखित गरीब प्राणी जैसे जीविका के लिये स्वल्प धनियों के भी आधीन हो जाते हैं इसी तरह बसन्त ऋतु में जल पक्षी और भौंरे छोटे-छोटे ताल तलैयों के भी आधीन हो रहे हैं। बसन्त में श्वेतार्क एवं कुन्द की डाली तो फूल ही गई है पलाश का पेड़ फूल से ढँककर वन की शोभा बढ़ा रहा है। मालती पुष्प के वियोग में भौंरे मानो अग्नि में जलने की भावना से अंगार समझकर पलाश पुष्प पर गिर रहे हैं। भ्रमरों से गुंजित तिलक का श्वेत पुष्प तो मानो बसन्त का हास्य ही है। पुष्पों के पराग से समस्त वनस्थली आच्छादित बासन्तिक वायु तथा चन्द्र की निर्मल किरणें कोकिलों को कैसी सुखदायिनी हो रही हैं जैसे पुष्पित कदम्ब के वृक्ष समूह वन की शोभा बढ़ाते हैं। शिशिर ऋतु के चले जाने से वन की सभी वस्तुयें अमृत तुल्य मालूम पड़ती हैं ।।११–३७।।

राजकुमार श्रीराम जी के विनोदार्थं विदूषक ने पुनः कहा कि हे श्रीरामभद्र जू ! आम की मंजरी के कण वायु से उड़-उड़कर सैनिकों के मस्तक पर गिर-गिरकर उन्हें गृहिणी का स्मरण दिलाते हैं। जो सैनिक कभी वन में नहीं आये थे, वे बेचारे दूर से पुष्पित पलाशवृन्द को देखकर मानते हैं कि वन में दावानल लगा है। परन्तु फूले हुए कुन्द, मंदार, आम्र आदि देखकर चकित रह जाते हैं, उनकी दशा देखकर दूसरे सैनिक हँसते हुए कहते हैं कि मत्त भ्रमरों से युक्त यह आम हम लोगों को बौरा (मत्त पागल) बनाने के लिए स्वयं बौरा (फूला) है। यह सुनकर एक विनोदी सैनिक छड़ी लेकर आम्र मंजरी को मारने गिराने लगा उसकी इस चेष्टा से सभी रघुवंशी कुमार हंसने लगे ॥३८–४४॥

इति पंच चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

इसके बाद श्रीराम जी ने अपने बन्धुओं, मित्रों, सेवकों, सैनिकों और शिकारी कुत्तों को साथ लेकर गहन वन में प्रवेश किया। उस समय श्रीराम जी ने वनमाला को मस्तक पर बाँध लिया और अपने घोड़े को नचाने लगे। वन देवताओं ने श्रीराम जी को देखकर कामदेव को आया हुआ समझा। धनुष चढ़ाकर जब श्रीराम जी ने गर्जना किया तो उस महारण्य के गजराज तथा मृगराज क्रोधित होकर प्रतिध्वनि करने लगे। घोड़ों के खुर से उठी धूलि ने आकाश आच्छादित कर दिया ॥ १–६ ॥

इतने में एक हरिणों का झुण्ड सामने से निकला जिसमें कई दूध पीने वाले बच्चे भी थे। बड़ी-बड़ी सींगों वाला मत्त कृष्णसार आगे था। परन्तु उसकी कस्तूरी पकी नहीं थी इससे किसी ने हरिणों से छेड़छाड़ नहीं किया प्रत्युत श्रीरामजी के विदूषक ने अपना घोड़ा दौड़ा हरिणों को भगा दिया। इतने में एक जगह अकेले में पकी कस्तूरी वाले मृग को देखा। उसका मारना आवश्यक समझ कर धनुष संभाला तो परन्तु उसकी सुन्दर आँखें देखकर गुणग्राही श्रीराम जी बाण न चढ़ा सके, दूसरे सैनिक ने उसे मारा। तब निषाद गुह ने कहा कि हे श्रीराम मृगों को छोड़िये, बड़े-बड़े दाँत वाले मत्तगजेन्द्र एवं भयंकर मृगेन्द्र मारने चलिये। तभी विदूषक ने बताया कि थोड़ी दूर पर ही एक छिछले ताल

में बहुत बड़े-बड़े कोलों (शूकरों) का झुण्ड है जो शूका तृण की जड़ उशीर (खस) को बिनष्ट कर रहे हैं। यह सुनकर दूसरे विदूषक ने कहा कि भाइयो नर घाती बाराहों के सामने मैं तो नहीं जाऊँगा। यह सुनकर सभी राजकुमार हँसने लगे ।। ७–१९ ।। तब गुह की सलाह से श्रीराम जी बाराहों की तरफ चले उधर से एक विशाल बाराह अपनी भयंकर एवं तीक्ष्ण खांग (दाँत) से सैनिकों की तरफ न जाकर श्रीराम जी के ऊपर झपटा। श्रीराम जी ने एक चोखे तीर से उसे मार गिराया। सैनिकों ने भी एक भयंकर गैंड़े को मारा। जब शिकारी दल आगे बढ़ा तो हँकवा लोगों से पता चला कि घोड़ों का हिनहिनाना सुनकर एक सिंह इधर ही आ रहा है। श्रीराम जी ने पूँछा कि इस सिंह को अकेले मारने के लिये कौन बीड़ा लेता है ? गुह ने बीड़ा लेकर पूँछा कि इस सिंह को तीर से मारूँ या तलवार से ? रामजी ने तीर से मारने को कहा तो धनुष चढ़ाकर निषाद ने सिंह के मस्तक पर तीर मारा; सिर में तीर धँसते ही सिंह गर्जना करके उछला वैसे ही गुह ने भी उछलकर हाथ ही से दूसरा तीर सिंह के गले में घुसेड़ दिया। सिंह को मारकर प्रतापी गुह निषाद ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। तब श्रीराम जी ने गुह को गले लगा लिया और खूब पुरस्कार दिया ।। २०–३० ।। उसी समय दूसरे हँकवा ने पास में ही थोड़ी दूर पर ही एक भयंकर सिंह के होने का पता दिया। तब श्री भरत जी ने श्रीराम जी से आज्ञा माँगकर प्रस्थान किया, उनके सखा गण एवं सैनिक कुछ पीछे चले। अनेकों गजेन्द्रों को मारने वाला वह भयंकर केशरी दहाड़ते हुए भरत जी पर झपटा। श्री भरत जी ने जल्दी से उसके मस्तक पर तीर मारा। तीर का स्पर्श होते ही सिंह ने मरकर दिव्य देह धारण कर लिया, मुकुट, कुण्डल, शंख, चक्र, तुलसी माला से विभूषित चार भुजाधारी श्री विष्णु पार्षद के समान शोभित वह पुरुष श्री भरत जी के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। जब श्री भरत जी ने उसका परिचय पूँछा ।।३१–४२।।

।। इति षट् चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४६ ।।

सैंतालीसवाँ अध्याय

सिंह विनिर्मुक्त दिव्य पुरुष ने कहा कि मैं पूर्व जन्म में कलिङ्ग देश (उड़ीसा)

में शंकर शर्मा नामक ब्राह्मण था, दुष्टों के संग में पड़कर मैंने अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया और वर्णाश्रमाचार, वैष्णव, द्विज, देवता सबकी निन्दा करने लगा। एक बार घूमते-घूमते प्रयाग में भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जाकर उन्हें घी, चीनी, तिल, खीर, मेवा आदि अग्नि में हवन करते देखा। देखते ही उनकी हँसी उड़ाने लगा ।।१–६।। मैंने कहा महात्मन् ! यह क्या निरर्थक कार्य कर रहे हो जो ऐसे सुखाद्य पायस—खीर को अग्नि में फेंक रहे हो। अरे यह खीर मुझे दे दो जिसे खाकर मैं तुम्हारे जैसे ढोंगियों को पटकने के लिये बली बनूं। अपने अज्ञान से तुम उत्तमोत्तम वस्तुओं को जलाकर राख कर रहे हो। मेरी बात सुनकर भरद्वाज ऋषि बोले रे द्विजाधम् ब्रह्मबन्धु ! तू क्यों वैदिक कर्म की निन्दा करता है। मैं वेदोक्त कृत्यों से श्री हरि की आराधना करता हूँ। तू सिंहवत होना चाहता है तो जा तू सिंह बन जा। यह श्राप सुनते ही मेरा सारा मद उतर गया तो हाथ जोड़कर मुझ पापी ने श्रापोद्धार पूँछा ।।७–१३।। मुनि ने बताया कि त्रेतायुग में साक्षात् नारायण ही चार रूप से अयोध्या में दशरथ कुमार बनकर अवतीर्ण होंगे। उनमें कनिष्ठ कुमार श्री भरत के हाथ से मरने पर तुम मुक्त हो जावोगे। आज महर्षि की वाणी सत्य हुई ।।१४–१७।।

नमस्ते राजपुत्राय भरताय नमो नमः।
नमस्ते रघुवर्याय नमस्ते सत्व मूर्तये ।। १८ ।।

हे सत्वमूर्ति रघुकुलश्रेष्ठ राजकुमार श्रीभरतजी ! आपको बारम्बार नमस्कार है। अब आज्ञा दीजिये कि जाकर श्रीरामजी के चरणों में प्रणाम करके परमधाम को जाऊँ। श्रीभरतजी ने कहा मैं भी तो वहीं चल रहा हूँ। सबने डेरे पर श्रीरामजी के पास आकर प्रणाम करके, सब समाचार सुनाया इतने ही में एक दिव्य विमान आया जिस पर बैठकर मुक्त पुरुष भगवान के उस धाम को गया जहाँ केवल धार्मिक भगवद्भक्त ही जाते हैं, भगवद्धर्मरहित अर्थात् अभक्त, शठ, भूतद्रोही और खल जहाँ कभी भी नहीं जाने पाते ।।१८-२५।। इति सप्त चत्वारिंशोऽध्याय ।।४७।।

अड़तालीसवाँ अध्याय

एक दिन गोमती के किनारे एक भयंकर वन में मृगयार्थं श्रीरामजी ससमाज पहुँचकर निषादराज गुह से बोले कि मित्र ! अब तो दिन का चौथा पहर बीत रहा है। शिकारी एवं सैनिक भी थके हैं, धुयें के दिखाई पड़ने से मालूम होता है कि ऋषियों का आश्रम भी पास ही है। ये गायें भी शायद वहीं जा रही हैं। उधर ही जाने वाले ये मृगगण भी शायद आश्रमवासी ही हैं। ऐसा सोचकर श्रीरामजी ऋषि आश्रम के समीप पहुँचे ॥१-८॥ श्रीरामजी को आश्रम पर आया जानकर शिष्यों सहित महर्षि मेधावीजी फल फूलादि हाथ में लेकर आगे आये। मुनि को दूर से देखते ही श्रीरामादि सभी कोई सवारियों से उतर पड़े और दौड़कर मुनि के चरणों पर सिर रख-रख के प्रणाम किया, आशीर्वाद पाकर श्रीरामजी ने कहा—महर्षि ! गोमती के इस घाट पर आते ही समस्त पाप धो उठा अतः आज से इस घाट का नाम धोपाप तीर्थ होगा और आज के दिन अर्थात् जेष्ठ शुक्ल १० दशमी को विधिवत् यहाँ स्नान दान से समस्त पाप धो उठेंगे एवं अक्षय पुण्य की प्राप्ति होगी। मुनि ने महान् आदर सत्कार किया सब लोगों ने उतर कर यत्र-तत्र पड़ाव डाल दिये, आश्रम से काफी दूर हटकर हाथी, घोड़े, ऊँट आदि पेड़ों में बाँध दिये गये। सभी ने सन्ध्या वन्दन आदि किया। इतने में ही कौशल्या जी का भेजा हुआ पक्वान्नादि आ गया। सबने केले के पत्ते पर व्यालू (रात्रि भोजन) किया। दिन भर के परिश्रान्त (थके) होने से सब सोने लगे ॥९-१७॥ अर्द्धरात्रि के पश्चात् शत्रुघ्नजी उठकर शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर भ्रातृ प्रेमवश रक्षा टन (बालाटन) के लिये आश्रम से बाहर घूमने निकले। इसी बीच में वहाँ एक महान् उत्पात शुरू हो गया कि सेना के हाथी घोड़े आदि बंधन तुड़ा-तुड़ाकर वेग से भागने लगे। कारण कि एक महा मतवाले बनैले हाथी के आने की गंध लगी। पालतू हाथियों की गन्ध पाकर एक महामत्त एवं बड़े-बड़े मोटे दाँतों वाला बहुत बड़ा जंगली हाथी आ गया और जिन-जिन पेड़ों में पालतू हाथी बँधे थे उन-उन पेड़ों को सूँड से उखाड़-उखाड़ कर फेंकने लगा। वह बनैला हाथी धूल से धूसरित था और जैसे पहाड़ी टीलों से झरने झरें वैसे ही उसके दोनों गंडस्थल से मद की धार बहती थी, जिसकी तीव्र

गन्ध फैल रही थी। हाथी घोड़ों के भगदड़ से सभी सैनिक हड़बड़ाकर उठ गये। 'क्या हुआ' 'क्या है' आदि कहकर कोलाहल करने लगे। हस्तिपालों (पीलवानों) ने कुमार शत्रुघ्न से कहा कि हमारे हाथियों से लड़ने जंगली हाथी आया है ॥१८–२६॥

इतने में निषादराज गुह ने कहा कि जल्दी से बहुत से उल्मुक (लुकारा-मशाल) जलाकर उसे दिखाओ तो वह भाग जायेगा। शत्रुघ्नजी के पूँछने पर हस्तियों ने दूर से जब उस वन्य गजराज को दिखाया तो छोटे कुमार ने हँसकर पत्थर पर घिसकर चोखा किया हुआ स्वर्ण पुंखवाला तीर मारा। वह तीर गजेन्द्र के मस्तक को फोड़ते हुए पेट में होकर मलद्वार से बाहर निकलकर दूर गिरा और वह गज भी मरकर तुरन्त शंख चक्र वनमालाधारी चतुर्भुज दिव्य देह हो गया। यह आश्चर्य देखकर शत्रुघ्नजी ने उसका कारण पूँछा तो उस देव पुरुष ने बताया कि हे राघव मैं इसके पूर्व जन्म में माहिष्मती में ब्राह्मण था परन्तु साधु निन्दा, विष्णु निन्दा और मद्यपान में रत रहता था। एक बार कोई सुदर्शन नामक ऋषि सरोवर में स्नान करके श्री हरि की पूजा करते हुये घन्टा शंख बजाने लगे। तब मैंने ऊँचे स्वर से अट्टहास करते हुये कहा कि क्या हाथी सरीखे पों पों करके घन्टा बजाते हैं। सुनते ही ऋषि ने श्राप दिया कि दुर्मते जा तू हाथी हो जा ॥३०–४२॥

घंटा नादं शंख नादं हरि गीतं तथैव च।
श्रुत्वा हसन्ति येपापास्तेवै नरक गामिनः ॥४४॥
निन्दा कुर्वन्तिये विष्णोर्हरस्य तत्परस्यवा।
तेष्मं मुखंन द्रष्टव्यं संगतिस्तु कुतस्तराम् ॥४५॥

जो कोई भगवत् पूजन का घन्टानाद, शंखनाद एवं भगवत् स्तुति कीर्तन कथा आदि सुनकर हँसी करते हैं वह पापी रौरव नरक को जाते है। जो वैष्णव, विष्णु या शिव जी की निन्दा करता है उसका मुँह न देखना चाहिये संगति करना तो दूर की बात है। श्राप सुनते ही भयभीत होकर उसके

शापोद्धार पूंछने पर मुनि ने बताया कि त्रेता में नारायणावतार होगा। भ्राता पुरुष श्रीशत्रुघ्नजी के हाथ मारे जाने पर तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। इस समय मुनि की वाणी सत्य हुई। हे चक्रधारिन मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥४४-५३॥

वने रणे महाघोरे संकटे शत्रुस्यंगणे।
ध्यानं तव करिष्यन्ति तेषांकाल भयंनहि॥

वन में, रण में, महाघोर संकट में अथवा शत्रुओं से सर्वथा घिर जाने पर जो कोई आप (शत्रुघ्न जी) का ध्यान करेगा उसे काल तक का भी डर नहीं रहेगा। ऐसा कह शत्रुघ्न जी के चरणों में प्रणाम करके वह परम पद को चला गया। प्रातःकाल होने पर श्री राम जी के पास गये तो गुह ने रात का सारा समाचार श्री राम जी से बताया। सुनकर प्रणाम करके लज्जित खड़े हुये शत्रुघ्न को पुनः प्रेम से अंक में भर लिया और कहा कि इस महाघोर वन में हम लोग तो घोर निद्रा में सोते ही रहे तुमने और मित्रवर गुह ने ही सब की रक्षा किया। मित्रवर गुह के कारण ही तो हम लोग वन में निर्भय विचरते हैं। तदुपरान्त प्रातः कालिक संध्या आदि करके प्रस्थान की तैयारी करने लगे। ॥ ५४-६० ॥ इत्यष्ट चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

महर्षि मेधावी जी से आज्ञा माँग प्रणाम करके श्रीराम जी ने ससैन्य प्रस्थान किया। रथारूढ़ श्रीराम जी ने एक सिंह को देखा कि कोलाहल सुनकर भागा जा रहा है। सारथी को सिंह के पीछे रथ दौड़ाने की आज्ञा दिया। रथ वायु वेग से मृगेन्द्र के पीछे दौड़ाया गया। श्री राम जी ने रथ की तेजी देखकर सारथी के रथ संचालन शिक्षा की खूब तारीफ किया। सारथी ने बताया कि राजकुमार! यह मृगेन्द्र तो विलक्षण स्वभाव का मालूम होता है कभी छिपता, कभी प्रगट होता है। श्री राम जी ने कहा कि बाण को डर से कभी शरीर को संकुचित कर लेता है तो कभी ग्रीवा टेढ़ी करके रथ की तरफ देखने लगता है।

धूर्तोऽयंमृगराजस्तु ह्याश्रमस्थो न संशय: ।।१६।।

यह धूर्त मृगेन्द्र (सिंह) अवश्य किसी ऋषि आश्रम का पालतू है ।।१–१६।।

श्रीराम जी रथ रोककर ऐसा कहते ही थे तभी सभी शिकारी एवं सैनिक भी आ गये । सेना के नगारा आदि बाजों को सुनकर जंगल से दो बाल खिल्य ऋषि निकलकर सैन्य के पास आये और कहने लगे कि यहाँ के सभी पशु आश्रम के पालित हैं हिंसक वर्ग के होते हुए भी हिंसक नहीं हैं अत: किसी श्वापद को मत मारियेगा । श्रीराम जी ने रथ से उतर कर ऋषियों को प्रणाम किया और अनजानते में आश्रमस्थ मृगेन्द्र के दौड़ाने के अपराध की क्षमा याचना करने लगे । ऋषियों ने कहा कि अनजान में किया हुआ अपराध तो क्षम्य होता ही है और आपने तो आश्रमस्थ पशु की हत्या किया ही नहीं तब अपराध कैसा । अस्तु हम लोग तो आशीर्वाद देते हैं कि तुम चारों भाइयों का व्याह शीघ्र ही मिथिलेश की चारों सुन्दरी कन्याओं से एक साथ ही हो ।।१७–२४।।

उन ऋषियों से विदा लेकर श्री राम जी समाज सहित आगे बढ़े । मध्याह्न काल में सरयू तट पर श्रृष्य श्रृंग के आश्रम पर पहुँचे । धूप से सभी व्याकुल हो गये थे बाहनों के मुख से फेन निकल रहा था । सेना के कोलाहल से उस वन के प्राणी—बाघ, भालू, बाराह, सिंह, गैंडा, भैंसा, बानर, शशा, हिरण आदि सभी भयभीत होकर श्रृंगी ऋषि के आश्रम पर एकत्र हो गये । पशुओं का पलायन देखकर शिष्यों से पूँछने पर मालुम हुआ कि अवधेश कुमारों के भय से वह पशु सैकड़ों की संख्या में सरयू में गिरे जा रहे हैं । तो मुनिराज ने शिष्यों के द्वारा आखेट के लिये मना करवा दिया । ऋषि शिष्य की आज्ञा सुनते ही सारी सैन्य ने शस्त्र डाल दिये और कुछ खास-खास मित्रों एवं सैनिकों सहित राजकुमार चारों भाई आश्रम पर गये । सबने जाकर सपत्नीक ऋषि को प्रणाम किया । ऋषि पत्नी शान्ता देवी अंगाधिपति रोमपाद की कन्या हैं और रोमपाद एवं दशरथ जी में परम मैत्री होने से दशरथजी को शान्ता जी सदैव पितृव्य (चाचा) ही कहतीं थीं । इसी से चारों भाइयों को छोटा भाई मानकर उनका प्रणाम स्वीकार करके अपने अंचल से चारों भाइयों का मुख पोंछकर वात्सल्य प्रगट किया ।। २५–३६ ।।

श्रृंगी ऋषि भी आशीर्वाद देकर चारों भाइयों से मिले। आश्रम के भीतर आए हुए कुमारों एवं सैनिकों के अतिरिक्त (पड़ाव पर पड़े हुए) समस्त लोगों के लिये भी भोजनादि की राजकीय व्यवस्था अपने योग बल से श्री श्रृंगी ऋषि ने किया। उस रात्रि सबने सरयू तट पर ही निवास किया। ऋषिवर के तप प्रभाव से देवता एवं देवांगनाओं से भी सुन्दर सैकड़ों दास दासी सैनिकों की सेवा में बराबर उपस्थित थे। प्रातःकाल स्नान आह्निक से निवृत्त होकर मुनिराज से विदा माँगने गये तो किसी विदूषक ने पूँछा कि माहात्मन् ! भला यह तो बताइये कि हम लोगों की सेवा में जो इतनी सुन्दरियों को आपने लगा दिया है ये सब आपकी बहनें ही हैं कि इनमें माता मौसी आदि भी हैं और कौन-कौन आपकी बड़ी बहनें हैं और कौन-कौन छोटी ? यह सुनकर सभी रघुवंशी हँसने लगे। परिहास को समझकर मुनि ने भी सबके साथ हँसने में योग दिया ॥४०–४८॥

जब श्री राम ने अयोध्या जाने के लिये आज्ञा माँगी तो ऋषिराज ने कहा कि आप मेरा एक काम करते जाइये अर्थात् इसी घाट के आस-पास एक भयंकर ग्राह अभी थोड़े दिनों से कहीं से आ गया है। वह कभी-कभी स्नान करते हुए नर नारियों को खींच ले जाता है। आप कृपा करके उसे मार डालिये श्री राम जी ग्राह मारना स्वीकार करके घाट पर गये। उसी समय कोलाहल सुनकर स्नानार्थी को पकड़ने के लिये ग्राह किनारे आया। उसके दिखाई पड़ते ही श्री राम जी ने तीक्ष्ण वाण मारा। वाण लगते ही वह ग्राह मर कर परम्पद को चला गया ॥४९–५४॥

मुनि ने मिल-भेंटकर श्री राम जी को विदा किया। चारों अवधेश कुमार हाथी पर और अनेक मित्रगण घोड़ों एवं रथों पर चढ़कर चले। आखेट किये हुये वन्य श्वापद (शेर, चीता, बाराह, सिंह, गेंडा) की खालें, श्रृंग, नख, दाँत एवं हाथियों के दाँत और विचित्र-विचित्र काष्ठ वन्य फल फूल धातुराग गज-मुक्तायें पार्वतीय मणियाँ तथा जीवित पकड़े हुये पालने के लिये दर्शनीय मृग, सस, गवय आदि अनेकों वन्य पशु-पक्षी सभी शकटों (गाड़ियों) पर लादकर सैनिकों की संरक्षा में चले। सैन्य अयोध्या के निकट पहुँची तब किशोरगण

प्रसन्नता से घोड़ों को नचाते हैं, हाथियों की दौड़ करते हैं। दुन्दुभी ढक्का आदि का तुमुल नाद सुनकर एवं दूर से श्री राम जी की सैन्य को देखकर कोविदार ध्वज से पहचानते ही द्वार रक्षकों ने परकोटा (चहारदीवाली) के शिखिर-बुर्ज पर से उतर कर झटपट शहर पनाह फाटक खोल दिया। राजकुमारों को देखने सभी बालक से वृद्ध तक घर से निकल पड़े। स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ गईं। महाराज दसरथ जी अत्यन्त उत्कण्ठा से सिंहासन पर से उचक-उचक कर बाहर द्वार की तरफ देखने लगते हैं, रानियाँ पुत्र दर्शनोत्सुकता से सखियों एवं दासियों सहित ऊपरी सौध (छत) पर चढ़ गईं। नगर में प्रवेश करने पर अनेकों वाद्य बजने लगे नृत्यगीत—मंगलाचार होने लगे। गजारूढ़ श्री राम जी को देखकर युवतियाँ हृदय में परमानन्द प्राप्त करतीं हैं, जिनके बिना उनका क्षण काल सैकड़ों युगवत् बीतता था उस मुख कमल का अनिमेष नेत्र पुट से पान करने लगीं ॥५५—६५॥

अतसी पुष्पवत श्याम मुख पर पसीने की बूदें शोभा दे रहीं हैं। कुण्डल एवं मुख पर लहराती लोल लटें धूलि से धूमिल हैं। स्वर्णपट्टिका युक्त पगड़ी सिर पर शोभित है जिसमें अनेकों मोतियों के गुच्छे झालरें लटक रहीं हैं। कण्ठ में बड़े-बड़े हीरों के कण्ठे पहने गजारूढ़ कुमारों को पाँच दिन के बाद देखने के कारण किसी के नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हैं। अनेक लोग राज द्वार की तरफ दौड़ गये। राजमहल की तीसरी कक्षा में अन्य सैनिक, पाँचवी कक्षा में सखागण एवं सातवें (अन्तिम) द्वार पर छठीं कक्षा में राजकुमारगण वाहनों से उतरे। दौड़कर पिता के चरणों में प्रणाम करते ही महाराज ने एक साथ चारों कुमारों को उठाकर गले लगा लिया। महाराज के नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगा। श्री राम जी की आज्ञा से निषादराज गुह ने समस्त वन्य वस्तुयें राजा को दिखाया। राजा ने खूब प्रशंसा की। सभी लोग धन्य, धन्य, वाह वाह करने लगे। महाराज ने अपनी जड़ाऊ तलवार अपने हाथ से निषादराज गुह को पुरस्कार में दिया। चारों कुमार भी माताओं के पास गये। प्रणाम करते ही माताओं ने गोद में भर लिया। अनेक भूषण वस्त्र निवछावर किये तथा पुत्रों की मंगल-कामना से अनेक दान पुण्य किये गये। इस प्रकार नर रूप धारी नारायण के चरित्र नित्य ही होते रहते थे। अमंगल निवारक इन

मंगलमय चरित्रों को कहने सुनने से प्राण समस्त सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

वाचकाय प्रदातव्यं वस्त्र रत्न हिरण्यकम्।
वाचके परितुष्टे च संतुष्टाः सन्ति देवताः ॥८३॥

श्री राम कथा बाचक को वस्त्र रत्न स्वर्ण आदि देना चाहिये, वक्ता के सन्तुष्ट होने से सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह श्री राम रहस्य अत्यन्त दुर्लभ अतएव गोप्य है। श्री राम कृपा से ही प्राप्य होता है इसके कथन श्रवण के अनन्त पुण्य को मैं नहीं कह सकता। श्री राम कृपा से यह वेद व्यास जी के प्रसाद से मुझे मिला है। इसके पश्चात् परम पुण्य प्रद श्रोताओं के अघनाशक, महारमणीक विवाह चरित्र कहूँगा ॥६६–८६॥

इत्येकोन पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥
समाप्तमिदं सत्योपाख्यान पूर्वार्द्धम् ॥

— — —

श्री सत्योपाख्यान

उत्तरार्द्ध पहिला अध्याय

शौनक जी ने कहा कि हे महाबुद्धे सूत जी ! जिसके श्रवण मात्र से मुक्ति हो जाती है ऐसा श्रीराम चरित्र पुनः कहिये। साक्षात् लक्ष्मी श्री सीता जी पृथ्वी से क्यों और कैसे प्रगट हुई, पुनः श्री राम जी से विवाह कैसे हुआ ? बताइये। सूतजी कहने लगे—परम दिव्य बैकुण्ठ के पार्षदों से सेवित श्री हरि श्री जी के सहित सुखासीन रहा करते हैं उस भगवद्धाम में नित्य मुक्त पुरुष बसते हैं। वहाँ सर्व कामप्रद निः श्रेयस नाम रमणीक वन है। सपत्नीक देवतागण उनकी परिक्रमा करते हैं, चारों वेद भगवान के सामने नाचते गाते हैं। जन मन मोहकारी माया की प्रभुता वहाँ नहीं है। अतः वहाँ मायिक रज, तम, सत्व नहीं है वहाँ तो महारानी श्री जू की ही प्रभुता है जो श्री जी समस्त ब्रह्माण्ड के पालने में समर्थ हैं। अनन्त मुक्ता मणियों से भूषित वहाँ के विष्वक सेनादि पार्षद हैं। उस रमा बैकुण्ठ में जब भगवदिच्छा होती है तो उर्वशी आदि अप्सरायें तथा ऋतुराज नामक गन्धर्व अपनी परम रूपमती कन्या बासन्तिका के साथ श्री जी की सेवा में पहुँचा करता है। बासन्तिका के विधिपूर्वक (शास्त्रीय) गीत नृत्य एवं हाव-भाव प्रदर्शनादि से श्री जी अत्यन्त प्रसन्न हुआ करतीं थीं ॥१—२७॥ एक बार बासन्तिका के नृत्य गीतादि से श्री जी को प्रसन्न जानकर भगवान ने बासन्तिका से वरदान माँगने को कहा। वह लज्जितस्मित पूर्वक श्री जू के मुख की तरफ देखने लगीं। उसके हार्दिक भाव को जानकर श्री जी ने कहा कि भविष्य में जब श्री कृष्णावतार होगा तब तुम श्री कृष्ण जी की अष्ट पट रानियों में लक्ष्मणा नाम की पटरानी होकर मेरी तरह श्री हरि का वल्लभ सुख प्राप्त करोगी। बासन्तिका ने प्रणाम करके पूंछा कि भला इस रामावतार में वह सुख क्यों न मिलेगा। श्री जी ने कहा कि इस अवतार में तो प्रभु एक पत्नी व्रती रहेंगे। हाँ सुभगा नाम की सखी बनकर तुम

अयोध्या में दिव्य दम्पति की सेवा कर सकती हो। श्री जी की आज्ञा सुनकर बासन्तिका बहुत खुश हो गई और जब अणिम आदिक अठारह सिद्धियाँ जनकपुर में सीता जी की सखियाँ हुईं तो बासन्ति का भी सुभग नाम से श्री सीता जी की सखी हुई ॥२८—४३॥ इत्युत्तरार्द्धं प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

एक बार मिथला नरेश सीरध्वज ने अनेक ऋषियों, राजाओं को बुलाकर एक महा यज्ञ की तैयारी किया। बैशाख शुक्ला नौमी मंगल दिन पुष्य नक्षत्र में मध्याह्न काल में जब स्वर्ण निर्मित हल से वेदी भूमिका संशोधन करने लगे तो (लांगल) हल के पृथ्वी में लगते ही पृथ्वी तल का भेदन करके कन्या रूप में श्री जी प्रगट हो गईं। आकाश में बाजे बजने लगे, पुष्प वृष्टि होने लगी आकाश मंडल में देवकृत नृत्य गान उत्सव होने लगे। आकाश वाणी हुई कि राजन्! इस कन्या का पालन करो भविष्य में आपका इससे महान् कल्याण होगा। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक कन्या को गोद में उठाकर अपनी प्रधान महिषी सुनैना जी की गोद में दे दिया। सुनैना जी के पुत्र वीरध्वज तो थे परन्तु कोई कन्या नहीं थी, कन्या के गोद में लेते ही वात्सल्यातिरेक से दूध टपकने लगा उसके कुछ मास बाद ही मिथिलेश के छोटे भाई कुशध्वज की पत्नी ने माण्डवी नाम की पुत्री जना और दो वर्ष बाद सुनैना के गर्भ से उर्मिला नाम्नी कन्या ने जन्म लिया तत्पश्चात् कुशध्वज पत्नी ने भी श्रुति कीर्ति नाम्नी कन्या को जन्म दिया। ॥१—१३॥ बासन्तिका सुभगा नाम से तथा अष्टादशी से दिया अन्यान्य नाम से एवं और भी त्रिपाद्वि भूति की नित्य सखियाँ श्री जी की सखी रूप से जनकपुर में उत्पन्न हुईं। जानकी जी के प्रादुर्भाव के बाद तो सभी मिथिलावासी धन-धान्य से पूर्ण हो गये। सखियों के सहित जानकी जी नित्य बाल केलि करते हुये बढ़ने लगीं। दश वर्ष मात्र की होते ही जानकी जी श्यामा षोडशी किशोरी सरीखी लगने लगीं। माता-पिता भाई परिजन पुरजन जो भी सीता जी को देखता वही बात्सल्यानन्द के समुद्र में निमग्न हो जाता। सभी मिथिलावासी अपनी कन्यावत ही भाव से आनन्द समुद्र में मग्न रहते। सीता जी सखियों

सहित कभी स्नानार्थपुर के बाहर विरजा में जातीं कभी वाटिका में खेलतीं, कभी अपने हाथ से रसोई बनाकर ब्राह्मणों को परोसतीं खिलातीं। तत्वज्ञ ब्राह्मण गण तो साक्षात् रमा जान ही लेते थे। कभी सखियों में परस्पर नृत्य गीतादि करते हुये वीणा सितार, मृदंग बाँसुरी आदि बजातीं। कभी-कभी घर के कुल देव नारायण को अपने हाथ की बनाई पुष्प माला एवं मणि मालायें पहनातीं ॥१४—२६॥ अप्रतिम सौन्दर्य एवं विवाह योग्य शरीरावयव देखकर एक दिन रानी सुनैना जी ने जनक जी से वैवाहिक उत्सव के लिए आग्रह किया। जनक जी ने कहा देवि चिन्ता तो मुझे भी सीता के जन्म काल से ही है कि सीता के योग्य अलौकिक भाव से उत्पन्न (अवीर्यज) पुरुष कहाँ मिलेगा। तत्पश्चात् राजा अपने शयन महल में जाकर भगवच्चिन्तवन करते हुये कुशासन पर लेट गये। स्वप्न में शंकर जी ने कहा कि तुम्हारे यहाँ पूजित जो मेरा पिनाक धनुष है इसके उठाकर तोड़ डालने वाले को सीता विवाह की प्रतिज्ञा की घोषणा करवा दो, धनुष तोड़ने वाला ही सीता के योग्य (अवीर्यज) अलौकिक भाव से उत्पन्न पुरुष होगा। प्रातःकाल जनक राज ने समस्त देशों में घोषणा करवा दिया। (सूचना भेज दिया) कि शिव धनुष भंजक को ही सीता व्याही जावेंगी। वह क्षत्रिय राजा हो चाहे गरीब हो एक वर्ष बाद आगामी आश्विनीय पूर्णमा तक इसकी अन्तिम तिथि है उस समय सीता की अवस्था साढ़े बारह साल की हो जायेगी। प्रतिज्ञा सुन-सुनकर अनेक राजा लोग आने लगे। सभी वर्णों के स्त्री-पुरुष उत्सव देखने आने लगे। एक दिन रावण का भेजा हुआ उसका प्रहस्त नाम का मंत्री भी सभा में आया उसने देखा कि वहाँ अनेक ऋषि मुनि एवम् सूत मागध वैतालिक, स्त्री, पुरुष, नागरिक, ग्रामीण अनेक देशवासी दर्शनार्थी एकत्र हैं ॥२७—४२॥ प्रहस्त ने देखा कि अनेक राजा राजपुत्र धनुष तोड़ने की अभिलाषा से एकत्र हैं। उनमें बलि पुत्र महाबली सहस्त्रबाहु वाण, महा पराक्रमी संकाशी नरेश परम शिव भक्त दुर्मति राजा सुधन्वा भी हैं। सभा के परिपूर्ण हो जाने पर जब सखियों सहित राज कन्या सीता जी सभा में आईं तो आगन्तुक राजा लोग अनेक प्रकार की श्रृंगारिक चेष्टा करने लगे। कोई अपना मुकुट ठीक करता, कोई हाथ में कमल-पुष्प

घुमाता, कोई नख से कमल की पखुड़ियाँ नोचता, कोई किसी के हाथ प्रलपन करता, मुक्तामाल गले से निकालता पहिनता, कोई अकारण ही हँसता, कोई म्यान से तलवार निकालता रखता, कोई-कोई पान खाते, हाथ नचाकर मुद्रिका दिखाते, दाँत दिखाते, मूछों पर ताव देते आदि अनेक प्रकार की चेष्टा करते कि राजकुमारी इधर देखें। परन्तु सीता जी किसी तरफ न देखकर धनुष का पूजन करके माता के पास चलीं गईं ॥४३—५४॥ इत्युत्तरोर्द्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

मागधों ने हाथ उठाकर जनक का प्रण सब राजाओं को सुना दिया। जिसे सुनते ही अनेक राजा लोग व्यायाम-सा करने लगे। कोई कमर बाँधकर धनुष के पास गया तो वह धनुष को भयंकर सर्प के रूप में देखकर काँपने लगा। वह अपने आसन पर लौट कर दूसरे राजा से कहने लगा कि धनुष के बहाने भयंकर अजगर है। दूसरा एक राजा गया तो उसे धनुष दिखाई ही नहीं पड़ा वह हाथ फैलाकर धनुष कहाँ है पूँछने लगा तो लोग हँसने लगे कि तुम्हारी ताकत मालूम हो गई जो धनुष देख नहीं सकता वह तोड़ेगा क्या। कोई राजा मूँछों पर ताव देते हुये सिंह गर्जन करके सिंह गति से गए तो धनुष की जगह भयंकर सिंह देखकर उलटे पाँव भगे। लोगों के पूंछने पर कहा कि इस धूर्त जनक ने राजाओं को धोखा से मारने के लिये धनुष के नाम से सिंह बाँध रखा है। कोई राजा धनुष के छूते ही चिल्ला पड़ा कि यह तो अग्नि तप्त बहुत बड़ा लौह स्तम्भ है छूते ही हाथ जलने लगा। किसी ने धनुष के मध्य में तो हाथ लगाया पर थोड़ा भी हिला तक न सका। किसी राजा को धनुष शिव रूप दिखाई पड़ा तो वह प्रणाम करके लौट पड़ा ॥१—१४॥

एक बार सैकड़ों राजाओं ने मिलकर उठाना चाहा तो भी तिल मात्र न हिला तो कहने लगे क्या सुमेरु गिरि ही धनुष बना है। उसी समय बलि पुत्र महावीर बाणासुर धनुष तोड़ने गया तो उसे शिव रूप देखकर प्रणाम किया और बोला कि यह स्वयं शिव हैं, मैं तो घर जाता हूँ। तब प्रहस्त ने कहा कि अरे मूढ़ जनक ! लंकाधिपति साक्षात् कुबेरानुज पौलस्त्य रावण जी को अपनी कन्या

दे दे। श्री रावण जी जीत कर समस्त पृथ्वी मंडल तुम्हें दे देंगे। जनक जी ने कहा कि यद्यपि यह प्रण क्षत्रियों के लिये ही है परन्तु राजा होने और उत्तम कुल से उत्पन्न होने के नाते यदि रावण स्वयं आकर धनुष तोड़ दें तो कन्या उन्हें दे दूँगा। प्रहस्त ने कहा यदि इष्टदेव शिव का धनुष न होता तो क्षण मात्र में चूर्ण कर देता। यदि तुम सीधे कन्या न दोगे तो कभी श्री रावण जी उसे हर लेंगे। जनक ने कहा कि यदि जनक की सीता हरण करेंगे तो उसका सर्व वंश नाश हो जायगा। तब प्रहस्त राजा जनक जी को गाली देते हुए लंका चला गया ॥१५—२६॥

राजा सुधन्वा ने कहा कि धनुष और सीता दोनों मुझे दे दो नहीं तो मेरे नौकर लोग तुम्हें थप्पड़ों और लातों से पीस डालेंगे। इतना सुनते ही जनक के सैनिक शस्त्रास्त्र से सज्जित जनक के पास खड़े हो गये। विवेकी राजाओं ने रोका तो सुधन्वा ने सभा से निकल कर अपनी सैन्य से मिथलापुरी घेर लिया। उस समय कुछ सुधन्वा की ओर से कुछ जनक की ओर से लड़ने लगे। साल भर तक महा भयंकर युद्ध हुआ तब राजा जनक ने दुखित होकर शिव का स्मरण किया। शिव प्रेषित देव सेना ने आकर सुधन्वा की सैन्य का विनाश कर दिया, जनक के हाथ से सुधन्वा मारा गया। सुधन्वा के सहायक राजा लोग भाग गये। सुधन्वा का सामान सैनिकों ने लुट लिया। संकाशी पुरी का राज्य जनक ने अपने छोटे भाई कुशध्वज को दे दिया क्योंकि सुधन्वा के भाई या बेटा कोई और नहीं था। अभी निश्चित शारदी पौर्णिमा में तीन मास बाकी थे इसी से धनुश यज्ञ का संभार पुनः किया गया ॥२७—३८॥

इत्युत्तरोर्द्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

सूत जी ने आगे बतलाया कि सिद्धाश्रम निवासी महामुनि विश्वामित्र जी शिव जी की आज्ञा से राम जी को लेने अयोध्या राजद्वार पर पहुँचे। द्वारपाल से सुनकर वशिष्ठादि ब्राह्मणों सहित बाहर आकर राजा दशरथ ने कौशिक के चरणों पर अपना शिर रखकर प्रणाम किया आशीष पाया वशिष्ठ विश्वामित्र

परस्पर गले मिले। राजा ने अर्घ्यपाद्यादि दे कर कौशिक को अन्तःपुर में ले जाकर विधिवत् पूजन किया और तब प्रार्थना किया कि ब्रह्मर्षि ! आप किस लिये आये हैं ? आपकी आज्ञा का पालन मैं प्राण, सम्पत्ति एवं पुत्रादि द्वारा करूँगा ।। १—७ ।। राजा की बात से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने कहा कि राजन ! आपने प्राण संपत्ति पुत्रादि देने को कहा है अतः मैं केवल रामभद्र को ही सप्ताह मात्र के लिये चाहता हूँ। राजा ने कहा कि आप इच्छापूर्वक कुमार को ले जाइये, रघुवंशियों से याचना कभी व्यर्थ नहीं होती, यद्यपि कि पुत्रों को मैंने बड़े कष्ट से पाया है। तत्पश्चात् राजा ने बशिष्ठ और कौशल्या से सलाह करके रामभद्र के साथ लक्ष्मण कुमार को भी मुनि के साथ दे दिया। आशीर्वाद देकर पुत्रों को विदा करते समय राजा रानी के नेत्रों में जल का प्रवाह आ गया। सभी गुरुजनों को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करके दोनों कुमार मुनियों के साथ चले। मार्ग में पौर कन्यायें अटारियों से लावा (धान की खीलें) और प्रभूत पुष्प वृष्टि करने लगीं। मन्त्रियों ने जब कुमारों के साथ सैन्य कर देने की आज्ञा राजा से चाहा तो राजा ने कहा कि महा मुनि जी का आशीर्वाद ही अनन्त सैनिकों से बढ़ कर रक्षक है और जब महात्माओं की सेवा स्वयं कुमारों को ही करनी है तो उनके लिए सेवक देना भी उचित नहीं है ! गजेन्द्रारूढ़ निकलने वाले राजकुमारों को मुनि के संग नंगे पांव जाते देख-कर पुरवासियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। जैसे सूर्य के साथ मधु और माधव हों वैसे ही मुनि के साथ दोनों कुमार शोभित हुए। ।। ८--१९ ।। नगर से बाहर होते ही मुनि ने कुमारों को बला और अतिबला विद्यायें दीं, जिसके प्रभाव से कभी कोई कष्ट नहीं व्याप सकता मानों शिशु माता की गोद में हों। अनेक पुरातन कथायें सुनते अनेकों ग्रामों को देखते प्रसन्नतापूर्वक दोनों कुमार जाते हैं। उन्हें देखकर ग्राम ललनायें अपने नेत्रों को सफल मानती हैं। वायु पुष्पों की सुगन्ध, से पक्षीगण नृत्य से और मेघ अपनी छाया से कुमारों को सुख पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। मार्ग में गोपगण कहीं घुटनों पर दोहनी रखे गाय दुह रहे थे, कहीं खेतों में स्त्रियाँ शुकादि पक्षी एवं मृगों को भगा रहीं थीं। कहीं गीत गाती हुई सुन्दरियों के सामने मृगगण खड़े थे उनका तृण चरना बन्द

था। मुनि के संग जाते हुए धनुर्बाणधारी कुमारों को देखकर सुन्दरियाँ उन्हें प्रत्यक्ष विचरते हुए कामदेव समझती हैं। जिससे सात्विक भाव से वे द्रवित हो जातीं हैं और ऐसा तो होता ही है ॥ २०—३४ ॥

कितनी स्त्रियाँ ओष्ट पर तर्जनी रखकर मुनि से पूछती थीं कि महात्मन ! सत्य-सत्य कहिये ये दोनों आपके पुत्र हैं या शिष्य ? वे माता-पिता कैसे पाषाण हृदय हैं जिनने ऐसे कुमारों को आपके साथ कर दिया। कौशिक सबको संक्षेप में परिचय बताया करते थे। एक जगह अनेक ग्रामीणों ने ठहरने की प्रार्थना किया। सन्ध्या सन्निकट जानकर वहाँ रह गये लोगों ने अत्यन्त सेवा किया। प्रातःकाल सबसे सप्रेम विदा होकर आगे बढ़े। मार्ग में भयंकर वन देखकर कुमारों ने धनुष चढ़ाकर भयंकर टंकार किया। जिसे सुनकर भादों की अमावस्या की रात्रि समान काले रङ्ग वाली भयानक वृद्धा ताड़का कपालों का कुण्डल पहने, वृक्षों को कंपाती, धूलि वर्षाती, भयंकर गर्जन करते हुये, मनुष्यों के आंत की माला पहने हुये आती दीख पड़ी। उसे स्त्री जानकर रामजी संकुचित हो गये परन्तु विश्वामित्र की प्रबल आज्ञा से एक वाण उसकी छाती में मारा जिससे वह मर गई। तब विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर शस्त्रास्त्रा के अभिनव मंत्रों को दिया ॥ ३६—५० ॥ जैसे सूर्य से सूर्य कान्त मणि प्रकाशित हो जाती है वैसे उन मन्त्रों से राम लक्ष्मण अति तेजान्वित हो गये। सिद्धाश्रम पर पहुँच कर दूसरे दिन मुनियों ने यज्ञारम्भ किया और दोनों धनुर्धर वीर रक्षा करने लगे। छठे दिन आकाश में आकर राक्षसगण रुधिर आदि अशुद्ध वस्तुयें बरसाने लगे। तब रामजी ने वाण मार मारीच को समुद्र तट तक उड़ा दिया और सुबाहु के मास से पक्षियों को तृप्त किया अर्थात् सुबाहु को मार डाला। अन्य चौदह हजार राक्षसों को उतनी ही देर में लक्ष्मण कुमार ने इसी तरह नष्ट कर दिया जैसे आश्विन के सूर्य भूमि वाणों (कैचुओं चारों) को। निर्विघ्न यज्ञ पूरा हो गया मुनियों ने कुमारों के महाबल को देखकर खूब आशीर्वाद देकर अपने स्पर्श से कुमारों के भुजों की प्रशंसा किया। ॥ ५१—५६ ॥

इत्युत्तरोर्द्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

उत्तरार्द्ध पाँचवाँ अध्याय

जिस दिन विश्वामित्र का यज्ञ पूरा हुआ उसी दिन जनक के दूत ने आकर विश्वामित्र के मिथिला पधारने की प्रार्थना की। [स्मरण रहे विश्वामित्र का प्रधान आश्रम मिथिला में ही कौशिकी किनारे था। वहाँ न मिलने पर जनक दूत सिद्धाश्रम पहुँचा।] वहाँ का समाचार सुनकर ऋषियों एवं कुमारों को साथ लेकर अनेक पुरातन कहते हुये गौतमाश्रम पर पहुँचे जहाँ अहिल्या श्राप से पाषाण प्रतिमावत् पड़ी थी। अहिल्या एवं देवराज के व्यभिचार और श्राप की कथा सुनकर अहिल्योद्धार के लिए विश्वामित्र के कहने पर श्री रामजी ने चरणरज देकर उसका उद्धार कर दिया। जब वह पत्थर से अपने असली एवं नवीन रूप को पा गई तो श्री राम जी की स्तुति करके महर्षि गौतम के साथ-साथ रहने लगी और विश्वामित्र की मण्डली ने मिथिलानगर के समीप एक आम्रोपवन में निवास के लिये पड़ाव डाला। आस-पास और भी बहुत राजाओं के पड़ाव थे। ।।१—१३।।

दूत ने जाकर जनक जी को मुनि आगमन की सूचना दिया, सुनकर राजा जनक ने अनेक सभ्रांत नागरिकों एवं पुरोहित शतानन्द के सहित आकर मुनियों को प्रणाम किया। परस्पर कुशल समाचार आदान प्रदान के बाद राजाने प्रार्थना किया कि आप तो शतानन्द की तरह हमारे खास गुरुजन हैं, बाहरी आगन्तुकों में यहाँ रहना उचित नहीं है। इसी बीच में कोटि मन्मथ मन-मथनकारी दोनों कुमारों को देखकर उनके रूपोदार्य गुण शृङ्गारादि की प्रशंसा करते हुए परिचय पूँछा तो विश्वामित्र ने युगल कुमारों का परिचय बताते हुये अपनी यज्ञ रक्षा का सारा बृतान्त एवं अहिल्योद्धार का बृतान्त सुनाकर विश्वास दिलाया कि इन्हीं महाबली कोटि कन्दर्प लावण्यनिधि श्रीभद्रजी से ही आपके प्राण की रक्षा होगी ।। १६——४१।। इत्युत्तरार्द्धे पंचमोऽध्यायः ।।५।।

छठवाँ अध्याय

महर्षि की बात सुनकर राजा जनक जी बहुत ही आनन्दित हुए और गुरु की प्रेरणा इशारा से दोनों कुमारों ने जाकर राजा को प्रणाम किया।

राजा ने आनन्दावेग में दोनों को मस्तक अवधाण करते हुए गोद में बैठा लिया। एक ही पूर्वज(इक्ष्वाकु) की शाखा जानकर परस्पर में कुमारों और राजा जनक को महान आनन्द हुआ, कुमारों के मुख पर हाथ फेरते हुए जनक नरेश बारम्बार अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे ॥ १ ॥ आत्मज्ञान के बल पर राजा ने पहचान तो लिया कि ये दोनों कुमार साक्षात् नारायण ही हैं, सीता साक्षात् महालक्ष्मी हैं तो भी प्रत्यक्ष में बोले कि महामान्य मित्रवर दशरथजी के पुत्रों का स्मरण न रहने से मैंने धनुष-भंग की प्रतिज्ञा करके बड़ी भूल की। अयोध्या नरेश हम राजाओं के शिर मौर हैं, मैं तो रघुवंश का किंकरमात्र हूँ! क्या करूँ स्वयंवर के नियम के प्रतिकूल चलकर अयोध्या या किसी राजा को व्यक्तिगत निमन्त्रण भेज ही नहीं सकता था। मेरा बड़ा सौभाग्य है जो हमारे चक्रवर्ती युवराज ने आपकी वजह से यहाँ पदार्पण किया ॥ ६—१५ ॥

हे मुनिराज अब तो कृपा करके नगर में पधार कर पुरी को पवित्र कीजिए। विश्वामित्र ने कहा राजन् सर्व प्रकार से उचित है, यहाँ महर्षियों का मन रम गया है। हाँ प्रातःकाल मुनियों एवं राजकुमारों के साथ भोजन करने तुम्हारे यहाँ आ सकता हूँ। अच्छा अब आप लोग जाइए हम लोग भी अन्तिम संध्या एवं सूर्योपस्थान करेंगे ॥ १६–२३ ॥

विश्वामित्र की आज्ञा से राजा घर जाकर कहने लगे कि जानकी का ब्याह रामभद्र के साथ और उर्मिला का लक्ष्मण के साथ उचित होगा। महामुनि ने तो निश्चित रूप से कहा ही है कि रामभद्र धनुष अवश्य ही तोड़ेंगे, और इसी तरह की बातें परस्पर में करते हुए पुरवासियों ने आनन्दपूर्वक शयन करके रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल होने पर राजा ने मुनि को ससमाज भोजनार्थ बुलाने के लिये अनेक प्रकार की सवारी के साथ महर्षि शतानन्द और अपने कुमार को भेजा। उन लोगों ने जाकर मुनिराज से महल पधारने की प्रार्थना किया। ॥२४–३५॥ इत्युत्तरार्द्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

साँतवाँ अध्याय

विश्वामित्र जी ने ससमाज जनक राजभवन को प्रस्थान किया। श्रीराम जी का आना सुनकर समस्त पुरवासी नर-नारी राजमहल के मार्ग में एकत्र

होकर एकटक श्रीराम लक्ष्मण जी की शोभा देखने लगे और जनक जी को धन्य-धन्य कहने लगे। जनक जी ने द्वार पर आकर मुनियों को प्रणाम किया, कुमारों ने जनक जी को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। राजा ने कुमारों के हाथ पकड़कर आशीर्वाद दिया। और सबको अन्तःपुर में ले जाकर सुन्दर आसन दिया। एक प्रधान सिंहासन पर विश्वामित्र के दोनों बगल राम लक्ष्मण को बैठाकर मुनियों की विधिवत पूजा किया। अयोध्यानरेश के दोनों पुत्र जो बड़े कोमल होते हुए महाबली एवं कोटि कन्दर्प लावण्य तथा कोटि सूर्यप्रतीकाश हैं, उन दोनों को सुनयना आदि रानियाँ बारम्बार नख से शिख तक देखकर वात्सल्य रस में मग्न होने लगीं ॥१–२९॥ सर्वलोक शरण्यपरात्पर ब्रह्म को श्याम-गौर-किशोर कुमार के रूप में देखकर नवयुवतियाँ मन्मथ वाण से पीड़ित होकर अनेक हाव-भावादि से कोई राम को कोई लक्ष्मण को अपने रूप लावण्य पर आकर्षित करने की चेष्ठा करने लगीं। बारम्बार दीर्घ निःस्वास ले लेकर मन-ही-मन अपने-अपने इष्टदेव को मनाने लगीं कि यह राजकुमार हमारे पति हों। रानी सुनयना की आज्ञा से राजकुमारी सीता तथा उर्मिला ने सखियों के साथ आकर मुनियों को प्रणाम करके सुन्दर आशीर्वाद प्राप्त किया। रानी सुनयना तो अपनी दोनों कन्याओं और कुमारों को देखकर आनन्द में मग्न हो गईं। राजा ने मुनियों एवं राजकुमारों को भोजन कराकर ताम्बूलादि देकर अनेक प्रकार की सवारियों पर बैठाकर डेरे के लिये विदा किया। मार्ग में सभी नर-नारी बालक वृद्धगण अवधेशकुमारों को देखकर आनन्द मग्न होने लगे। इस तरह सब पुनः आम्रवन के पड़ाव पर आ गये ॥३०—४५॥ इत्युत्तरार्द्धे सप्तमोऽध्यायः ।७॥

आठवाँ अध्याय

शौनक जी ने कहा कि जिसके सुनने मात्र से मुक्ति हो जाती है वह श्रीराम विवाह एवं धनुषभंग की कथा सुनाइए। सूतजी कहने लगे तब दूसरे दिन जनक ने ज्योतिषियों एवं सूतमागध बन्दिजनों को बुलाकर आज्ञा दिया कि नगर के बाहर समस्त राज शिविरों में जा जाकर सूचना दे दो कि सब कोई रंगभूमि में उपस्थित हों। आज प्रतिज्ञा का अन्तिम दिन है। उन लोगों के खबर देते ही

सभी राजागण एवं जनकपुर के स्त्री-पुरुष बालक से वृद्ध तक अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार रंगभूमि में जा-जाकर बैठ गये। जनक ने कुमारों सहित विश्वामित्र को एक अति उच्च सिंहासन पर बैठाया जहाँ से राजकुमार राम लक्ष्मण सब को दिखाई पड़ें। तब आगत राजाओं से जनक ने कहा कि आज जो पिनाक को तोड़ देगा उसी के साथ विधिपूर्वक सीता का व्याह कर दूँगा ॥१—८॥ यह सुनकर पुरवासी सब जनक से कहने लगे कि महाराज ! इन आगत राजाओं का पराक्रम तो वर्षों से सब देख रहे हैं क्या आज कहीं से नया बल लेकर आये हैं। इस समय तो एकमात्र अवधेशकुमार का बल देखना है। पहले जोर आजमाई कर चुकने के कारण कोई राजा भी नहीं उठा प्रत्युत सभी ने पुरवासियों की बात का अनुमोदन किया। तब विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा कि बेटा उठकर धनुष तोड़ दो। आज्ञा पाकर श्रीराम जी उठे और गुरु एवं मुनियों को प्रणाम करके आशीर्वाद के शब्द जय जयकार सुनते हुए धनुष के पास जाकर पहले धनुष को प्रणाम किया और तब दक्षनाशक उस महा-धनुष को बायें हाथ से ऐसे उठा लिया जैसे नये केचुलि से घिरे मत्त (मूर्च्छित) नाग को कोई उठा ले। सबके देखते-देखते ही पहले तो प्रत्यंचाको धनुष की कोटि पर चढ़ाया और तब उसको काम के पुष्प (कोमल) धनुष के समान बीच से तोड़कर दो टुकड़े कर दिया। उस समय धनुष-भंग का बड़ा भयंकर शब्द हुआ। अनेक राजा तो भूमि पर औंधे मुँह गिर पड़े, अनेक राजा काँपने लगे। देवता लोग दुंदुभी बजाकर पुष्प बरसाने लगे ॥८—१५॥ जनकपुर में भी जय-जयकार एवं वाद्यों की तुमुल-ध्वनि होने लगी। पिता की आज्ञा से राज हंसनी की चाल-चलती हुई सर्वालंकार सम्पन्ना सीता ने आकर रामजी के कण्ठ में वरमाला पहना दी। नगर के लोग राम-सीता का व्याह होगा जानकर बड़े हर्षित हुए। दुष्ट राजा लोग मलिन हो गये और उठकर चुपचाप अपने देश चले गए। जनकजी ने प्रसन्न होकर मुनि और राम लक्ष्मण को हाथी पर बैठाकर नगर में प्रवेश किया। ब्राह्मणों, याचकों, दीन-दुखियों को खूब दान दिया। मुनियों सहित जामाता राम जी को लाकर राजमहल में निवास दिया। वह दिन-रात बड़े आनन्द में बिताया ॥१६—२३॥

इत्युत्तरार्द्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमाँ अध्याय

धनुभँग के दूसरे दिन राजा जनक प्रातःकालिक कृत्य सम्पूर्ण कर विश्वामित्र के पास जाकर प्रणाम करके बोले कि आपकी आज्ञा हो तो ससैन्य दशरथ जी को बुलाने के लिये दूत भेजूं। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राजा ने दूत भेजा। कई दिनों तक चलकर मैथिल दूत ने अयोध्या पहुँचकर अनेक अक्षौहिणी सुसज्जित सैन्य से रक्षित पुरी एवं राजमहल को देखकर महान् आनन्द लाभ किया ॥ १—६ ॥

महाराज दशरथ ने अपने द्वारपालों से जनक दूतों का आना जानने पर उन मैथिल दूतों को सभा में बुलाकर विश्वामित्र के यज्ञ और जनक प्रण-धनुर्भंग आदि समस्त समाचार श्रवण किया और गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी को मंत्रियों के द्वारा सादर बुलवाकर समस्त समाचार सुनाया। बशिष्ठ जी ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक शीघ्र बारात लेकर चलने की आज्ञा दिया। राजाज्ञा होते ही सेनाध्याक्ष प्रसन्नतापूर्वक अनेकों चतुरंगिणी दल एवं ऊँट पालकी आदि सजाने लगे। ढोल, नगाड़ा, मृदंग, तोसा, झाँझ, मुरज, तुरही, रणसिंहा आदि अनेक बाजे बजने लगे ॥ १०—२०॥

जिस समय महाराज ने महल में जाकर स्वयं सब समाचार कहा, कौशिल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि सभी रानियाँ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बार-बार कुमारों का समाचार पूँछ-पूँछकर अनेक दान-मान उत्सव एवं नारीशास्त्र (लोकव्यवहार) करने लगीं। महल में अनेकों प्रकार का गानवाद्य उत्सवादि होने लगा। शुभ-दिन शुभ-नक्षत्र में राजकीय सरदारों से बेष्ठित भरत शत्रुघ्न आदि राज पुरुष, एवं बशिष्ठ वामदेवादि पुरोहित वर्ग तथा अन्यान्य लोगों ने प्रस्थान किया ॥२१—२६॥ उस बारात में दस हजार हाथी, एक लाख घोड़ा सवार, साठ हजार रथ, और दश लाख पैदल, कई हजार पालकी, ऊँट एवं सामान ढोने वाले शकट (बैलगाड़ियाँ) तथा हजारों नाचने गाने वाले थे। कोषाध्यक्षों ने अकूत धन राशि साथ लेकर प्रस्थान किया। शुभ वस्त्राभूषणों से अलंकृता सौभाग्यवती पुर-युवतियाँ सिर पर मंगल कलश लिये वैवाहिक गीत गाती हुई

बारात पहुँचाने पुर-बाहर तक आईं। मध्य बारात में छत्र चँवर आदिराज अलंकरणों से शोभित राजा और राजगुरु थे। इस प्रकार चलकर कई दिनों में बारात मिथिलानगर के पास पहुँच गई ॥३०—३६॥

इत्युत्तरार्द्धं नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

राजा दशरथ का आना सुनकर बड़ी तैयारी के साथ नागरिकों को साथ लेकर जनक जी ने अवधेश की अगवानी किया। दोनों राजा अंकमाल देकर मिले। कुशल प्रश्नोंपरांत स्वयं जनक जी ने दशरथ जी का सारथ्य करते (रथ हांकते) हुए बारात को ग्राम के निकट लाकर वस्त्रगृहों (तम्बुओं) में ठहराया। तत्पश्चात् जनक जी आज्ञा लेकर नागरिकों सहित नगर में गये और महल से समस्त बरात के लिये उन्होंने नाना प्रकार के अन्न, दूध, दही, घृत, व्यंजन पकवान भेजवाया ॥ १—९ ॥ योगिराज महाराज जनक की आज्ञा से समस्त सिद्धियाँ अनेकों दास-दासियों के रूप में अयोध्यावासियों की सेवा में तत्पर हो गयीं। बड़े-बड़े योगियों को दुर्लभ जो सिद्धियाँ हैं उन्हें जनक जी की आज्ञा में तत्पर देखकर राजा दशरथ को महान् आश्चर्य हुआ ॥१०—१२॥

इसी बीच में महामुनि विश्वामित्र जी ने श्रीराम लक्ष्मण को साथ लेकर बरात को सनाथ किया। बारातियों ने अपने युवराज को देखकर परमानन्द प्राप्त किया। देखते ही दशरथ जी ने उठकर आगे बढ़कर मुनिराज के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया मुनि का मंगलमय आशीर्वाद पाकर जब उठे तो दोनों कुमारों को चरणों पर पड़ा देखते ही उठाकर छाती से लगा लिया। प्रेमाश्रु से मस्तक सिंचन करते हुये मस्तक सूँघकर आशीर्वाद दिया। विश्वामित्र जी ने कहा कि राजन् भाग्यवान पुरुष को सर्वत्र ऐश्वर्य बिखरा मिलता है। आपकी थाती पुत्रों को ब्याज के सहित देता हूँ ग्रहण कीजिये ॥१३—२०॥ कुछ समय बाद श्रीसतानन्द जी ने जनक की प्रार्थना सुनाई कि समस्त प्रधान बरातियों को लेकर कुमारों सहित मण्डप में पधारिये। तब दशरथ एवं सभी कुमार अलंकृत गजेन्द्रों पर चढ़कर नगर में चले। नगर में बरात का आना सुनकर जो मिथिला-

वासी स्त्री-पुरुष जहाँ जिस स्थिति में थे वैसे ही (कार्यों को अधूरे ही छोड़कर) बरात एवं समधी तथा दूलह देखने चल दिए। स्त्रियाँ तो अपने अधूरे शृंगार अस्तव्यस्त वस्त्राभूषणों पर ध्यान न देकर अपनी स्थिति के अनुकूल सड़क मार्ग, कोठों अटारियों पर दौड़ने घूमने लगीं। सुन्दरियों के मुख चन्द्र से समस्त गवाक्ष (खिड़कियाँ) भर उठीं। वे श्रीराम चारों भाइयों के अलौकिक सौंदर्य को देखकर समस्त अपनपौ भूल गईं ॥२१—३८॥ इत्युत्तरार्द्धे दशमोऽध्याय: ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीराम दर्शन में संलग्न मैथिलीय सुन्दरियाँ जनक जी को साधुवाद देती हैं कि यदि राजा जी धनुष-यज्ञ न करते तो श्री राम जी यहाँ कैसे आते, श्री सीताराम जी तो साक्षात् लक्ष्मीनारायण के समान ही हैं यदि सीता और राम का परस्पर विवाह न होता तो ब्रह्मा की मूर्खता लोक में चिरदिन तक विख्यात रहती। मार्ग में अनेक प्रकार के नृत्य गीत हास्य लास्य वाक् विलास आदि होता जाता था, इस प्रकार बारात महाराज जनक के राज द्वार पर पहुँच गई। ॥१—८॥ वेद पाठ करते हुए ब्राह्मणों के साथ द्वार पर आकर जनक जी ने अवधेश कुमारों का विधिवत् वर पूजन किया। जनक के पुत्र लक्ष्मी निधि ने हाथ का सहारा देकर हाथी पर से चारों महाराज कुमारों को उतारा। जनक ने राजा दशरथ को उतार कर सब को भीतर ले जाकर सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर मधुपर्क दिया। तत्पश्चात् मण्डप में जाकर राजा जनक जी का दिया हुआ लौकिक प्रथा के अनुसार दो वस्त्र ग्रहण किया। तब दोनों पक्ष के पुरोहितों ने अग्नि में घी आदि की आहुति देकर अग्निदेव को साक्षी नियत किया। ॥९—१६॥ तब सीता जी को मण्डप में लाकर जनक जी ने रामजी से कहा कि आप नारायण हैं आपको लक्ष्मी रूपा सीता पत्न्यर्थं देता हूँ स्वीकार कीजिए। जिस समय श्रीराम ने सीता जी का पाणिग्रहण किया उस समय वे दोनों मण्डप में रति और काम से बढ़कर सुन्दर मालूम पड़ने लगे। श्री सीता राम जी परस्पर के कर स्पर्श से बहुत आनन्दित हुए। नेत्रों में आनन्द का जल आ गया जिसे होम-धूम से उत्पन्न मानकर गोपन किया गया। तब वर-वधू दोनों ने अग्नि की प्रदक्षिणा किया। शतानन्द की आज्ञा से सीता जी ने अग्नि

में लाजा की आहुति नीचा सिर करके दिया। होम-धूम, कणपूर के माण को आभा एवं कपोल पर आये स्वेद-विन्दुओं से मिश्रित सीता जी के मुखारविन्द की अपूर्व शोभा हुई ॥१७—२४॥ तत्पश्चात् वर-कन्या को स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर ब्राह्मणों की आज्ञा से नगर के क्षत्रियदम्पतियों ने वर-वधू का अभिषेक किया। इसके बाद उसी विधि से भरत से माण्डवी का, लक्ष्मण से उर्मिला का और शत्रुघ्न से श्रुतिकीर्ति का व्याह कर दिया। विवाह के बाद बहुत-सा दहेज देकर चारों वर-वधुओं को ले जाकर महल के भीतर स्थापित कुल देवता श्री लक्ष्मीनारायण का पूजन करवाया ॥२५-३२॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

जनक महल में राजकुल की स्त्रियों के बीच में चारों कुमार विराजमान थे उसी समय शची, शारदा, साबित्री सती (भवानी) रमा तथा लोकपालों की स्त्रियाँ, गंधर्विणियाँ अप्सरायें आदि मनुष्य स्त्रियों के रूप में दिव्यदम्पति के दर्शनार्थ एकत्र (जनक के अन्तःपुर में) आईं। उनमें कोई गाती, कोई बजाती, कोई नृत्य करतीं और कोई राजकुमारों को मधुपर्क देतीं, कोई भोजन कराती थीं ॥१—५॥

इसी बीच में अद्वितीय सुन्दरी सीता जी की भाभी युवराज्ञी सिद्धिदेवी अपनी सखी शारदा जी के साथ श्रीराम जी के पास जाकर हाथ जोड़कर बैठी और पीताम्बर को हाथ से पकड़ कर बोलीं कि राजकुमार जी आपने मेरी छोटी-सी गुड़िया सरीखी ननद को तो मुझसे छीन लिया परन्तु बड़ी होने के नाते मुझे भी तो कुछ पूजा मिलनी चाहिए, ऐसा कह कर चारों कुमारों को पान के बीड़े देकर रेशमी रूमाल से चारों के मुख पोंछकर बार बार अपनी पूजा माँगने लगीं और कहने लगीं कि यदि आप मेरी पूजा न देंगे तो या तो मैं आप लोगों के साथ अयोध्या चलूँगी या आप लोग ही सेवक बनकर यहीं रह जाइये, यह सुनकर सभी सुन्दरियाँ हँसने लगीं। ६—१४॥

श्रीराम जी ने कहा कि हम लोग आपकी पूजा देंगे। रघुवंशी कभी किसी ब्राह्मणोत्तर के सेवक नहीं बनते अपितु निमिवंशी लोग देव सेवक बनकर योग

क्रिया द्वारा जो सिद्धियाँ, ऋद्धियाँ उपार्जन करते हैं हम रघुवंशी लोग तो उन ऋद्धि-सिद्धि को यथेच्छ भोगते हैं। श्रीराम जी की श्लेषमयी विनोद-वार्ता सुनकर सभी सुन्दरियाँ सिद्धि देवी को व्यंग कर हँसने लगीं। सिद्धि देवी ने हँसते हुये कहा कि अच्छा हम ही आपकी दासी बनेंगी परन्तु हमारी पूजा तो दीजिए। श्रीराम जी ने कहा अच्छा भाभी जी! अर्थ, धर्म एवं मोक्ष तीनों में जो चाहिए सो माँग लीजिए। सिद्धिदेवी ने कहा कि ऐसा वरदान दीजिए कि अपने पतिदेव के सहित हम आपकी चरण सेविका बनी रहें ॥१५—२१॥

युवराज्ञी की सखी शारदा जी ने कहा कि मैं भी आपके साथ अवध चलकर आपकी माताओं को देखूँगी, क्योंकि इन विदेह रानियों को शंका है कि गौर-वर्ण वाले दशरथ के पुत्र दो भाई श्याम क्यों हो गये? सुनकर श्रीराम जी मुस्कराने लगे जिसे देखकर सभी सुन्दरियाँ अत्यन्त मोहित होकर ध्यानस्थवत् हो गईं ॥२२—२७॥ इसी बीच में जनक जी ने भीतर से चारों कुमारों को बुलवाकर दशरथ वशिष्ठ एवं समस्त बरातियों के सहित सब को नाना प्रकार का भोजन करवाया। भोजन के बाद ताम्बूल ग्रहण करके जब बारात वरों एवं वधुओं के साथ शिविर (जनवास) में पहुँच गई तो दोनों राजाओं ने पुनः ब्राह्मणों एवं याचकों को खूब मुँह माँगा दान दिया ॥२८—३३॥

॥ इत्युत्तरार्द्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

कई मास रह लेने के बाद दशरथ जी ने अयोध्या जाने के लिए जनक जी से बार-बार विदा माँगना शुरू कर दिया। दोनों पुरोहितों के कहने पर जनक-जी ने विदा करना स्वीकार करके हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर, रथ, गायें, भैंस, भैंसे, बैल, भेड़ आदि और कम्बलादि बहुमूल्य वस्त्र-मुक्ता, मणिजटित भूषण, वर्तन आदि सभी जामाताओं को अलग दिया। पिता की आज्ञा से चारों कुमारों ने महल में जाकर सासुओं को प्रणाम करके जाने की आज्ञा माँगा ॥१६॥

सुन्दर रानियों ने बहुत धैर्य धारण करके चारों कन्याओं को खूब अलंकृत करके सास ससुर आदि गुरुजनों की सेवा करने की पति की रुचि पालन की

शिक्षा देकर बारम्बार सहस्त्रों आशीर्वाद देते हुए विदा करके अवधेश कुमारों से प्रार्थना किया कि ये कन्यायें रूपवती, गुणवंती होते हुए भी अभी तेरह-चौदह वर्ष की बालिकायें ही हैं। दूसरे सदैव माता, पिता, भाई, भाभी के दुलार प्यार में ही रहीं अतः यदि इनसे कोई अपराध हो जाय तो चरण सेविका जानकर क्षमा करते रहियेगा और धीरे-धीरे आप जिस तरह चाहेंगे ये उसी तरह की बन जायेंगी। क्योंकि गुरुजनों की रुचि पर चलने का इनका सदा का स्वभाव रहा है ॥७—२०॥ श्रीरामादि चारों जामाताओं से ऐसी बहुत सी प्रार्थना करके चारों कन्याओं को पुनः-पुनः आलिंगन करके रोती हुई कन्याओं को पालकी पर बैठाया। तत्पश्चात् पुनः प्रत्येक जामाताओं को बहुत-बहुत पारिवही दहेज देकर उनकी पत्नियों की पालकियों में बैठाया। चारों भाई ससुर सासु एवं अन्य गुरुजनों को प्रणाम करके जब प्रस्थान किए तो समस्त पुरजन परिजन दासी सेवकगण हा सीते कह रोने लगे और अनक प्रकार के मङ्गल बाजन बजने लगे, हाथी घोड़े आनन्द से हींसने लगे, ब्राह्मणगण शान्ति पाठ करने लगे। इस प्रकार बहुओं के विदा हो आने पर महाराज दशरथ जी अपने शत्रुञ्जय नाम वाले चार दाँत वाले महागज पर सवार हुए बशिष्ठादि द्विजवृन्द रथों पर और सभी बराती लोग अपनी रुचि के बाहनों पर आरूढ़ होकर मध्य में चारों दूल्हे दुलहनों की पालकियाँ करके डंका बजाते हुए बरात ने प्रस्थान किया और समस्त मिथिलावासी हर्ष शोक मिश्रित विचित्र दशा में खड़े देखते रहे ॥२१—३३॥ इत्युत्तरार्द्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

दुन्दुभी घोष करते हुए बारात अयोध्या वापिस पहुँची। बर-वधुओं का स्वर्णमय यान और उसके चारों ओर दासियों के पश्चात् दासों के अनेकों यान शोभित होने से वहाँ की भूमि पर स्वर्ण की मालायें बड़े ढग से सजाई हैं ऐसा ज्ञात होता था। आकाश में फैले हुए मेघसरीखे तम्बुओं की छटा थी। समस्त बारात नगर प्रवेश के शुभमुहूर्त की प्रतीक्षा में पडाव डाले विश्राम कर रही थी। इसी बीच में श्रीराम दर्शन की आकांक्षा से क्षत्रिय कुलान्तक यमदग्नि पुत्र परशुराम ने आकर श्रीराम जी से कहा कि "महाभाग राम! आपने शिव धनुष

तो तोड़ ही दिया ऐसा मैंने सुना है, अब यदि इस विष्णु धनुष को चढ़ा दीजिये तो मैं आपको नारायण मानकर आपके चरणों में प्रणाम करूँ। तब श्रीराम जी ने "ब्राह्मण का प्रसाद है" ऐसा कह ब्रह्मर्षियों को प्रणाम करके अनायास ही वैष्णव धनुष को चढ़ा दिया। परशुधर जी श्री सीताराम जी का ध्यान करते हुए प्रणाम करके चले गये। दशरथ जी ने भी शुभमुहूर्त में पुरी में प्रवेश किया। ॥१—१३॥ शंख गोमुख (तुरही) मृदंग, झाँझ, वीणा, नगारा आदि अनेक वाद्यों के साथ सब कोई प्रथम श्रीरङ्गनाथ जी का दर्शन करके वधुओं से रङ्गनाथ जी का पूजन प्रणाम कराकर तब समस्त नागरिकों को दर्शमान दे देने के लिए कुमारों को गजेन्द्रारूढ़ कराकर बड़ी-बड़ी राजवीथी सड़कों पर घुमाते हुये सर्वत्र पुरवासियों द्वारा लाजा पुष्प मणि मुक्ता आदि की वर्षा के बीच सभी कोई अपने राजा एवं रानियों की प्रशंसा कर रहे थे, मिथिलावासियों की प्रशंसा कर रहे थे और यह उत्सव देखने के कारण अपने सौभाग्य की भी प्रशंसा करते जा रहे थे ॥१४—२३॥ इस प्रकार महामहोत्सवपूर्वक बधुओं का डोले तथा बरोंका गजेन्द्र बड़ी रानी कौशल्या जी के भवन द्वार पर लगे। मङ्गल कलशयुक्त सुन्दरियों के साथ कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा तथा अन्य रानियाँ एवं राजकुल नारियाँ, पुरोहितानी आदि गोघृत से पूरित बाती एवं कपूर आदि से वर-वधुओं का नीरांजन करके परछिन आदि अन्य लोकाचार करते हुए चारों जोड़ों को आँगन में ले गईं ॥१४—२६॥ आँगन जाकर विस्तारपूर्वक राम लक्ष्मण के कृत्यों का जनक जी के दान-मान सत्कार वैभव एवं विश्वामित्र जी के अनुग्रह का गान किया। सासुओं ने बधुओं का मुख देखकर अनेक वस्त्राभूषण महल एवं राज्य के इलाके मुंह दिखाई में दिये, तत्पश्चात्—

वधूभिः सहितास्तास्तु देवागारं ययुः पुनः ॥३४॥

पुनः (दुबारा) बधुओं को मन्दिर में ले जाकर श्रीरङ्गनाथजी को प्रणाम कराकर अरुधन्ती आदि ब्राह्मणियों का चरण स्पर्शपूर्वक प्रणाम कराकर रानियों तथा विशिष्ठ-विशिष्ठ अन्य स्त्रियों का पादस्पर्श पूर्वक प्रणाम कराया। समस्त लौकिक वैदिक एवं कौलिक पारम्परिक विधियों के सम्पन्न हो जाने के बाद जब बधुओं को अपने-अपने बरों के साथ सिंहासन पर बैठाया गया तो राजा रानियाँ

तथा अन्य विशिष्ट जनों ने अनेक पुरस्कार बधुओं को दिये। इसी बीच में जो याचक एवं गुणी जन तथा नागरिकजन आँगन में आ गये उन्हें भी भोजन दान-मान से सन्तुष्ट कराकर कुमारों को आशीर्वाद दिलाकर विदा किया। सब लोग वैवाहिक आनन्द वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गये ॥३१—४०॥

इत्युत्तरार्द्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

रात्रि के आगमन होते ही इन्द्र की भेजी हुई अप्सरायें महल में आदर-मङ्गल करते हुए नृत्य करने लगीं। कौशल्या जी का प्रांगण मोटे-मोटे बहुमूल्य गलीचों के बिछे होने एवं दिव्य चदोवा तने होने से अपूर्व शोभा दे रहा था। सब लोग रमा उर्वशी आदि का हावभाव समन्वित दिव्य नृत्य देख रहे थे आकाश मार्ग से वहीं देवर्षि नारद जी उतरे। सबने देवर्षि की विधिवत् पूजा की नृत्य गीत वाद्य आदि तो होता ही था। नारद जी भी बीणा बजाकर नाचने गाने और भाव बताने लगे। मुनि राजा और अलग-अलग नारियों के सामने जा जाकर नाचने कूदने और भाव बताने लगे ॥१—१०॥

देवर्षि की पीली-पीली जटायें बिखर गईं। हाथ, दाढ़ी, मूँछ के केशों को उन्होंने इस ढंग से फैला दिया कि वीणा और करताल उन्हीं में बझकर रुक गई और एक हाथ तिलोत्तमा के कंधे पर दूसरा हाथ सुकेशी के कंधे पर रखकर मुँह फुलाकर शब्द करते मुँह से कमल केतकी (केवड़ा) की दिव्य सुगन्धयुक्त वायु निकाल कर लोगों की तरफ मुँह मटका-मटकाकर कौतुक करते हुए पूरे विदूषक (जोकर) ही बन गये। गहना कपड़ा पहने हुए मदारी की बंदरिया सरीखी दीख पड़ने वाली मथरा की ओर जब नारद जी ने मुँह घुमाया तो मंथरा भी रानी कैकयी जी के पास से उठकर नारद का पटुका पकड़ कर हँसते हुए बोली ऋषिवर आप मुझ ऐसी अनुपम सुन्दरी को देखकर जो मोहित हो गये तो कोई आश्चर्य नहीं। अरे कैकयी आदि भी मेरे सामने कुरूपा हैं तभी तो राजा दशरथ भी मुझ पर लट्टू हैं पर मैं ऐसे कुरूप बुड्ढे राजा के हाथ नहीं लग सकती। मुझ अपूर्व सुन्दरी का जोड़ा तो आपही के साथ लगाकर आपके बाप (ब्रह्मा) ने

हमारा आपका व्याह लिखा है। सुनकर सभी हँसने लगे, नारद जी ने भी हँसते हुये कहा कि सुन्दरि ! तुम्हारे सामने ये रानियाँ एवं तिलोत्तमा रंभादि किस गिनती में हैं। ये नई वधुयें सीता आदि भी तुम्हारे समान सुन्दरी नहीं हैं मैं तो तुम्हारे ऊँट सरीखे कूबर पर ही प्रसन्न हो गया हूँ। इस पर सबको हँसते देखकर सबको सुन्दर आशीर्वाद देकर नारद जी चले गये। तब राजा ने अन्य लोगों एवं अप्सराओं को बड़े आदर से विदा किया। इस श्रीराम विवाह चरित्र को जो मनुष्य सदैव पड़ता सुनता है उसे भगवद्भक्ति एवं मुक्ति तो मिलती ही है लोक में सदैव आनन्द मङ्गल प्राप्त करता रहता है ॥११—२२॥

इत्युत्तरार्द्धे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

अयोध्यापुरी की सभी वृद्धा, कन्या, तरुणी स्त्रियाँ राजमहल के प्रांगण में आकर महारानियों को प्रणाम करके स्थित हो गईं। रानियों ने सबका सत्कार किया। वे सब पौर स्त्रियाँ चारों वधुओं को देखकर आनन्दित होते हुए बारम्बार आशीर्वाद देती हैं कि ये बधुयें अखण्ड सौभाग्यवती, पति प्रिया एवं वीर प्रसवा हों। ऐसी पुत्रियाँ प्राप्त करने वाले महाराज जनक धन्य हैं। मुँह देखाई में बधूओं को बहुत-बहुत रत्नालकरणादि दिया। रानियों ने भी दानमान से सबका बहुत सत्कार किया। सब अपने घर गईं, इस प्रकार मांगलिक कोलाहल में महीनों व्यतीत हो गये ॥१——५॥ सुन्दर योगवार नक्षत्र आने पर उत्तम लग्न में कंकण छोड़ा गया, और श्री सरयू जी में सिराया गया और वर-वधुओं की फूलशय्या (सुहागरात) का महामहोत्सव सम्पन्न हुआ। एक बार श्रीरामजी अपने कनक भवन में मोतियों की झालर से शोभित दुग्ध फेनवत शुभ्र कोमल मखमली शय्या पर बैठे थे। उस समय अपने हाथ से ताम्बूल बीटिका तैयार करके श्री रामजी के मुखकमल में देकर चँवर करते हुए श्री सीता जी ने पूँछा कि सरयू जी से घिरी यह अयोध्यापुरी तो विरजा से वेष्ठित नाना वृक्षों से अलंकृत साक्षात् त्रिपाद्विभूतिस्थ महा बैकुण्ठ सरीखी ही लगती है। यहाँ के निवासी तो सभी नित्य मुक्त पार्षद हैं ही। यह कहकर खिड़की से चिक उठाकर

बारम्बार पुरी को देखने लगीं और सूर्य भी अस्ताचल चले गये ॥८—१७॥

श्री जी के मुखचन्द्र की ओर देखते हुए श्रीरामजी ने कहा प्रिये ! यह जो पूर्व में चन्द्र उदय हो रहा है यह तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर आकाश में भाग गया। तुम्हारे नेत्र को देखकर मृग वन में भागे, कटि को देख सिंह पहाड़ी कन्दराओं में छिपे, चाल देखकर गजेन्द्र दिशान्त में भगे, हाथ पाँव की शोभा देखकर कमल पानी में डूब गये, वेणी देखकर नाग विलों में घुस गये। अंग कान्ति देखकर स्वर्ण अग्नि में गलने लगे। ठीक है अपनी पराजय पर सज्जनों को दूर भाग जाना या जल-मरना चाहिए। १८—२७॥ ऐसा सुनकर मुसकाती हुई सीता जी ने कहा प्रभो ! मैं तो आपकी दासी हूँ आप चाहे जो कहें परन्तु सुन्दरी तो वही है जो पति की आज्ञा में रहकर पति प्रिया बनी रहै। पति-पत्नी दोनों एक चित्त होने से ही लोक-परलोक के सभी सुख भोगते हैं। इस प्रकार अनेक वार्ता एवं विनोद आदि में समय बीतता था। रात्रि बीतने पर उषाकाल में ही चारों कुमार अपने-अपने शयन मन्दिर से उठकर स्नान संध्या आदि दैनिक कृत्य करके माता-पिता गुरुजनों को प्रणाम करते। श्री सीता आदि चारों बहुयें सूर्योदय से बहुत पूर्व ही स्नानादि से निवृत्त होकर सासुओं के चरणों में प्रणाम करके श्रीरङ्गनाथ जी का दर्शन पूजनादि करके सासुओं की आज्ञा की प्रतीक्षा करतीं ॥२८—३३॥ इत्युत्तरार्द्धे षोडशोऽध्यायः ॥६१॥

सत्रहवाँ अध्याय

एक दिन शुभ मुहूर्त में कौशल्या जी ने सीता जी से कहा बहू ! आज तुम अपने हाथ से रसोई बनाकर, महाराज, राजकुमारों एवं बशिष्ठ वामदेव जावालि आदि ब्राह्मणों को स्वयं परोस कर जिमाओ। सासु की आज्ञा पा सीताजी ने चारों बहिनें मिलकर अनेक प्रकार का भोजन तैयार किया। दासियों एवं सखियों से भी कोई मदद नहीं लिया। श्री रङ्ग जी को भोग लगाकर भोजन करने वालों को बुलवाया। आने पर गुरु पुरोहित और ससुर का पाँव अपने हाथ से धोकर सबको सुन्दर आसन पर बैठाकर घूँघट निकाले हुए ही स्वर्ण पात्र में सबको भोजन परोसा ॥१—८॥

गुरुणा प्रेरितो राजा सीताय प्रददौ मणिम् ।
इन्द्रेणैव पुरादत्तो यज्ञे चैवाश्वमेधके ॥६॥
सैव चूणामणिज्ञेय: सर्व लोकेषु विश्रुत: ॥

गुरु बशिष्ठ की प्रेरणा से राजा ने एक दिव्य मणि सीता जी को दिया जो मणि अश्वमेध में इन्द्र ने राजा को दिया था, वही सर्वलोक विख्यात चूणामणि थी । चूड़ामणि पाकर सीता जी का मुख-कमल आनन्द से खिल उठा । अन्य लोगों ने भी सभी वधुओं को अनेक वस्त्राभूषण देकर बड़े प्रेम से बार-बार सराहना करते हुए भोजन करके आचमन किया एवं ताम्बूल लेकर बाहर गये । उसके बाद सासुओं एवं अन्य पारिवारिक स्त्रियों को परस कर जिमाया उनसे भी अनेक पुरस्कार तथा आशीर्वाद प्राप्त हुए । तत्पश्चात् सभी दास-दासियों को सत्कारपूर्वक खिलाकर उन्हें अनेक पुरस्कार देकर तब सखियों के सहित चारों बहुओं ने भोजन किया । सीता जी सासु, ससुर, पति, देवर आदि के लिए नित्य अपने हाथ से भोजन बनाने खिलाने लगीं । सासुओं के मना करने पर नहीं मानती थीं । सीता जी के पाकगृह में हरदम सब प्रकार के भोज्य-पदार्थ तैयार रहते थे ॥६—१५॥ इत्युत्तरार्द्धे सप्तदशोऽध्याय: ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

एक दिन श्री सीता जी ने श्रीरामजी से कहा कि प्रियतम ! मेरी इच्छा है कि सरयू जी के उत्तर वन विहार के लिए चला जाय । आप भाइयों मित्रों के साथ चलने के लिए पिताजी से आज्ञा ले लीजिए । मैं भी अपनी बहिनों एवं सखियों के सहित चलने के लिए मझली अम्बा (श्री कैकेयी) जी से कह छोटी एवं बड़ी महारानी से स्वीकृति मँगवा लूँगी । तब श्री रामजी ने पिता के पास जाकर प्रणाम करके कहा कि राजन् ! जो लोग मिथिला से दासीदास आये हैं वे अयोध्या के बाहर की तीर्थों के दर्शन स्नान करना चाहते हैं । महाराज ने आज्ञा देकर पुत्रों एवं वधुओं की सेवा में साथ जाने के लिए चतुरंगिणी सैन्य एवं अनेक दास-दासी, कोठारी भंडारी एवं काषाध्यक्ष को हुक्म दिया । जब तीर्थ-यात्रा के लिए अनेक लोग सरयू तीर पर एकत्र हुए ॥१—१०॥

राजकुमारों के दर्शन के लिए ही एक महान् पर्वोत्सव सरीखे बड़ा भारी मेला लग गया। सब यात्री बड़े-बड़े पोतों से सरयू पार होने लगे। चारों कुमार अपनी-अपनी पत्नियों के साथ अलग-अलग विशाल पोतों पर चले। लक्ष्मण जी ने अपनी पत्नी उर्मिला जी से कहा कि प्रिये! यह सहस्त्र धारा नामक तीर्थ है इसके पश्चिम में पापमोचन तीर्थ और पूर्व स्वर्गद्वार तीर्थ है। मैं लड़कपन में नित्य यहीं स्नान करने आता था। इसीलिए पिता जी ने मेर सखाओं एवं सैनिकों के लिए यहीं किला बनवा दिया है इसलिए यह घाट मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया है। इतना कहते-कहते पोत उस पार पहुँच गया ॥११—२६॥ इसी तरह श्रीराम ने स्वर्गद्वार तीर्थ का महात्म्य बतलाते हुए श्री सीता जी से कहा—

स्वर्ग द्वार सम तीर्थ नास्ति ब्रह्माण्ड गोलके ॥२७॥

स्वर्ग द्वार के समान तीर्थ ब्रह्माण्ड भर में कहीं नहीं है। यहाँ समस्त देवता अपनी पत्नियों सहित नित्य स्नान करने आते हैं। ऋषि, नाग, यक्ष, पन्नग, सिद्ध, गुह्यक आदि यहाँ अनेक रूप से नित्य स्नान करने आया करते हैं। अयोध्यावास का सबसे बड़ा फल तो यह है कि नित्य सरयू स्नान मिलता रहता है यह कहते-कहते पोत उस पार पहुँच गया ॥२७—३१॥

इत्युत्तरार्द्धेऽष्टादशोऽध्याय: ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

चतुरंगिणी सैन्य सहित उस पार उतर कर अनेक प्रकार के कमलों, जलचरों एवं जल-पक्षियों से सुशोभित भवानी सर (सती ताल) पर जब पहुँचे तो सुमन्त ने कहा कि कुँअर साहब जी सूर्य की किरणें तेज हो गईं सभी वाहनों के मुख से फेन निकलने लगा अत: आज यहीं विश्राम की आज्ञा दीजिए। यहाँ देव-मन्दिर के पास सुन्दर फलों से शोभित छायादार वृक्ष भी बहुत हैं और जलाशय भी बहुत बडा एवं अगाध है। तब श्री राम जी की आज्ञा से सब कोई वहीं उतर पड़े। सबके मध्य में चारों भाइयों के बड़े-बड़े तम्बू अलग-अलग लग गए। हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर, बैल आदि जंजीरों से पेड़ों में बाँध दिये गए। क्रय-

विक्रय की अनेकों दूकानें लग गईं ।।१—१३।। नागरिक लोग सती सर में यथेच्छ स्नानादि करने लगे । राज परिवार के लिए एक घाट परदा से घेर दिया गया । लोग सती सर से कमल-पुष्प ला-लाकर भगवान का पूजन करने लगे । भोजनादि से निवृत्त होकर सब कोई नृत्य, गीत, वाद्य, कीर्तन, कथा आदि के द्वारा रात्रि जागरण करने लगे । अर्धरात्रि के समय अनेक गणों एवं इन्द्रादि देवताओं के साथ साक्षात् शिवा-शिव आये सब लोगों ने उठकर देवताओं का स्वागत सत्कार पूजनादि यथोचित रूप मे किया । शिव जी ने कहा कि हे श्री रामजी आप चारों भाई तो साक्षात् नारायण हैं श्री सीता जी चार रूप से स्वयं महालक्ष्मी हैं । हम सब तो आपका ही भजन करते हैं । आप तो लोक-शिक्षा के लिए ही हमारा इतना आदर करते हैं ।।१४—२५।।

श्री रामेतिचते नाम वेदानां सारमेवहि ।
कथयिष्यन्ति ये नूनं मुक्ति यास्यन्ति ते भुवि ।।२६।।
हे श्री राम राम महावाहो सीतया रमया सह ।
ममहृत्कमले वासं कुरु द सोऽस्मिते सदा ।।२७।।

आपका 'श्री राम' नाम वेदों का सार है श्रीराम कहने वाले अवश्य मुक्त हो जाते हैं । हे श्री रामजी आप श्री सीताजी सहित नित्य हमारे हृदय में रहिए मैं सदा से आपका दास हूँ । आपकी लोक-पावनी कीर्ति को प्रेम से कहने सुनने वालों को मुक्ति अनायास ही (बिना अन्य साधनों के ही) मिल जाती है । अब यह वरदान दीजिए कि काशी में मरने वालों को 'राम' नाम सुनाया करूँ और आप उन्हें मुक्त किया कीजिए । इस प्रकार बार-बार स्तुति करके अपनी सब समाज के सहित वहीं अन्तर्धान हो गए । सब अयोध्यावासी बड़े विस्मित हुए और श्री सीता राम जी को साक्षात् परमात्मा जानकर प्रसन्नतापूर्वक शयन किया और उत्तम स्वप्न देखा ।।२६—३१।।

परं ब्रह्म परं धाम जगतां कारणं परम् ।
नागशय्या शयानं च द्विभुजं रघुनन्दनः ।।३२।।

परंब्रह्म परंधाम, समस्त ब्रह्माण्डों के परम कारण द्विभुज श्रीराम जी नाग-

शय्या पर आसीन त्रिपाद विभूति में विराजमान हैं। शिव, ब्रह्म, शेष, गरुड़ आदि सेवा में खड़े स्तुति करते हैं, ह्री, कीर्ति, सावित्री, भू, रती, शारदा, सती आदि सीता राम जी के चरणों की धीरे-धीरे चम्पी कर रही हैं और उसी साकेत नामक महावैकुन्ठ में ही अयोध्यावासियों ने स्वयं को भी देखा। ॥३२—३५॥ इत्युत्तरार्द्धे एकोन विंशोऽध्याय: ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

सबेरे जब अर्द्ध प्रहर रात्रि रह गई तब नौबत बजने लगी। वैदिक वेद पाठ करने लगे जिससे सभी कार्यकर्ता तैयार हो गए अन्न बर्तन गाड़ियों पर लादे गये, डेरे खेमें उखड़ने लगे। श्री राम जी तम्बू की परिधि के बाहर से बैतालिक (बंदीजन भाट) गण पद्य रचना करके श्री राम जी को जगाने लगे कि हे महाराज कुमार! निद्रा त्यागिये जनक राज किशोरीजी सखियों सहित मङ्गल आरती लिए आपके मुख चन्द्र के दर्शन की प्रतीक्षा में खड़ी हैं। उन सीता जी के मुख चन्द्र को देखते ही व्योमबिहारी चन्द्रा पराभव की लज्जा से मलीन हो गया। आपके नेत्र की स्पर्धा करने के लिए कमल खिल उठे उनमें से नेत्र तारक (पुतरी) के समान और इतस्तत: भ्रमण करने गाने लगे। वृक्ष पुष्पों की गंध मिश्रित वायु आपके सुगन्धित मुख वायु की स्पर्द्धा कर रहा है। कोमल पल्लवों पर ओस बुन्द ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे सुन्दरियों के दोनों ओष्ठों पर नासा मोती लटके। अभी तम नाशक सूर्य उदय भी नहीं हुए कि अन्धकार डर कर भागा जा रहा है। जैसे आपके पिता युद्ध के लिए जब जाते थे तो उनके रण-भूमि मे पहुँचने के पहले ही आप अपने वाणों से शत्रुओं का क्षय कर दिया करते थे। मत्त मतंग निद्रा त्याग कर जंजीर खींचते झूम रहे हैं अभी थोड़ी देर बाद ही उनके दाँतों पर पड़ती हुई सूर्य किरणें लाल-लाल मालूम पड़ने लगेंगी। घोड़े स्वस्थ होकर हींस रहे हैं। सुनिये पिंजरे का सुक कह रहा है कि हे राम जी! आपकी शय्या के फूल कुम्हला गये हैं और दीप की ज्योति क्षीण हो गई है। ॥१—१७॥ वन्दि पुत्रों का साहित्यिक गान सुनकर राजकुमारों ने शय्या का परित्याग किया। प्रात:कालिक दैनिक कृत्य करके भूषण, वस्त्र से अलंकृत होकर यथेप्सित वाहनों पर सवार हुए। श्री सीता आदि अन्त:पुर वासिनी कोई

पालकी कोई रथ पर सवार हुई। मत्स्याकार ध्वजा वाले शत्रुञ्जय नामक चतुर्दन्त महा गज पर आरूढ़ श्रीराम जी उदयाचल पर सूर्य के समान सुशोभित हुए। श्री राघव के चलते ही शंख दुन्दुभी आदि का महा नाद हुआ। सुमन्त का हाथी श्री राम जी के बगल में चलाया जाता था ।।१८—२२।। कुछ आगे बढ़ने पर सुमन्त ने कहा कि महाराज यह सरजू पार (सरवार) की भूमि बड़ी रमणीक है। यहाँ के लोग अत्यन्त धर्मात्मा हैं। यहाँ की भूमि में हेमन्त (अगहन) में पकने वाला शालिधान (जड़हन) और उत्तम गेहूँ खूब होता है यह भूमि अन्न के समान ही इक्षु (गन्ना) और अनेक (आम, कटहल, जामुन आदि) सफल वृक्षों से भी परिपूर्ण हैं। वायु कोण में राज्य की गोशाला है। उत्तर में अनेक धातु की खानों वाला पर्वत है। यह परम सुन्दरी मनोरामा नदी है आपके लिए महाराज ने यहीं पुत्रेष्ठीयज्ञ कराया था। यहाँ का वन भी बड़ा रमणीक है। श्री राम जी ने मनोरामा नदी को प्रणाम करके वहीं पड़ाव डालने की आज्ञा दिया। तुरन्त ही नदी के दोनों किनारों पर हजारों तम्बू खड़े हो गये। मध्याह्न काल में सीता जी श्री राम जी के साथ मनोरामा में नहाती हुई जल-क्रीड़ा करने लगीं। पानी इतना स्वच्छ है कि कोई गोता लगाकर छिप सकता ही नहीं अतः एक दूसरे के ऊपर खूब पानी उछाल-उछालकर घन्टों में स्नान समाप्त किया। पानी से सबके नेत्र लाल हो गये ।।२३—३१।। स्नान के बाद मुस्कुराते हुए श्री राम जी ने सीता जी से कहा प्रिये ! जैसे तुम मेरी मनोरमा हो वैसे ही यह नदी भी मेरी मनोरमा है। यह उद्दालक महर्षि के तपः स्थान से निकली है और सरयू जी में मिली है। इसमें स्नान मात्र से पुण्य की वृद्धि होती है। माहात्म्य कहकर द्विजातियों को दान देकर यथा विधि भोजन आदि किया। एक पहर दिन रह जाने पर श्रीरामजी ने बन्धुओं सखाओं एवं सीताजी तथा सखियों दासियों दासों के सहित, पुष्पों से अलंकृत परम रमणीक शाल बन में घूमने चलने के लिए सबको निर्देशित किया ।।३२—३८।।

।। इत्युत्तरार्द्धे विंशोऽध्यायः ।।२०।।

इक्कीसवाँ अध्याय

श्री रामजी ने बताया कि मेरे मित्र गुहराज ने समस्त वन की देखभाल कर

लिया है बाजा बजाकर सेवकों ने हिंसक जीवों को दूर भगा दिया है। अतः स्त्रियों के घूमने में किसी प्रकार की हानि नहीं है। ऐसा कहकर श्री रामजी ने सीता जी के सहित सबको साथ लेकर वन में प्रवेश किया। दल पुष्प फलादि से युक्त वृक्षों से शोभित वह वन छहों ऋतुओं मे विहरने योग्य था। जैसे समय (योग्यवय) पर सुन्दरियाँ अपने प्रियतम का मन आकर्षित करतीं हैं वैस वनश्री सबका मन आकृष्ट करती थी। नूपुर मेखला वजाते कोई सुन्दरी जब कुछ दूर जल्दी-जल्दी चलती तो अंगभार के कारण उसके मुख पर पसीना छूटने लगता। श्री माँडवी देवी मन में लज्जित होकर सोचती हैं कि ससुर (जेठ) जी श्रीराम जी के सामने मैं फूल कैसे चुनूँगी अतः भरत जी के साथ सखियों सहित अन्यत्र चली गईं इसी तरह उर्मिला लक्ष्मण को, और शत्रुघ्न को साथ लेकर श्रुतिकीर्ति भी अपने-अपने सखी समुदाय के साथ अन्यत्र गईं ॥१—१२॥ सपत्नीक अनुजों के इतस्ततः चले जाने पर श्रीराम जी श्री सीता जी के कन्धे पर भुजा रखकर वन में विचरने लगे। सीता जी ने अपने हाथ से फूल चुनकर माला बनाकर श्रीराम जी को पहनाया। श्रीराम जी ने भी बिना सुई और सूत के ही पुष्पमाल बनाकर सीता जी को पहनाया, और कर्णफूल वनाकर जब कानों में अपने हाथ से पहनाने लगे तो सीता जी ने कहा कि राजन्! आपके गुण रत्नों से ही मेरा कान भूषित है।

तस्यैव भूषितौकर्णौ यः शृणोतिकथांतव ॥१९। और यथार्थ में कान तो उसी के भूषित हैं जो आपकी कथा सुनता है। ऐसा कहकर जानकी जी पुनः फूल चुनने चली गईं। वन्य पुष्पों पर बैठे हुए भौंरे जानकी जी के मुख से कमल की सुगन्ध पाकर फूलों पर से उड़-उड़कर जानकी जी के मुख की ओर दौड़े। गुञ्जार करते भौंरों को दोनों हाथों से मुख पर से उड़ाती हुई लड़खड़ाती हुई रामजी की ओर भागीं और आते ही भयविह्वल अधीर होकर श्रीराम जी की गोद में गिर पड़ीं ॥१३—२३॥ हँसते हुये श्रीराम जी ने कहा प्रिये! स्वयं आलिगन करके तुमने मुझे महान् सुख प्रदान किया। तब मुसुकाते हुए श्री सीता जी ने श्रीराम जी के सर्वाङ्ग को पुष्पों से भूषित किया। इस प्रकार महाराज कुमारों के विहार करते-करते सूर्य अस्ताचल को जाने लगे तब सपत्नीक

राजकुमार एवं सखा-सखी, दास-दासी सभी ने शिविर (डेरे) पर जाकर स्नान एवं पश्चिमाभिमुखी संध्या करके भोजन किया और नित्य की तरह सब कोई एकत्र बैठकर सुयज्ञ जी से पौराणिक कथा सुनकर अपने-अपने वस्त्रगृह (तम्बू) में शयन करने चले गये। वह रात्रि आनन्दपूर्वक व्यतीत हुई ॥२४—२६॥

॥ इत्युत्तरार्द्धे एक विंशोऽध्यायः ॥२१॥

बाइसवाँ अध्याय

उषःकालिक नौबत बजने के साथ ही सभी लोग उठकर दैनिक कृत्य से निवृत्त होकर ससमाज प्रस्थान करके मनोरामा नदी के किनारे पहुंचे और उसके किनारे किनारे चलते हुये दोपहर को यज्ञ स्थान पर पहुँचकर श्री राम जी हाथी से उतरे। सैन्य का पड़ाव वहीं पड़ गया, श्री रामादि राजकुमार गण मनोरामा में स्नान करके तत्तीरवासी विरक्त वैष्णवों, ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों (विद्यार्थियों) को भोजन, वस्त्र, पुस्तकें एवं अनेक अन्यान्य दान देकर सब लोगों ने भोजन विश्राम करके रात्रि वहीं निवास किया। प्रातःकाल पुनः वह महती सैन्य दक्षिण दिशा में चलीं मार्ग मे एक सरोवर के निकट पहुँचने पर श्री राम जी ने सुमन्त्र से उस विविध कमलों से शोभित तड़ाग के सम्बन्ध में पूँछा ॥१—१०॥

सुमन्त्र ने कहा कि एक बहुत ही धर्मज्ञ उग्रतपा नाम के ब्राह्मण यहाँ तप करते थे। उनका तप नाश करने के लिये इन्द्र ने परम सुन्दरी पाँच स्ववेंश्यायें (अप्सरायें) भेजी। वे नव-यौवनायें आते ही ब्राह्मण से लिपट कर काम-कलायें दिखाने लगीं। ब्राह्मण ने क्रोधित होकर घोड़ी हो जाने का श्राप दे दिया। श्रापोद्धार की प्रार्थना करने पर बताया कि बहुत काल के बाद जब दिव्य-दम्पति श्री सीता-राम जी यहाँ आयेंगे और श्री जानकी देवी की कृपा-दृष्टि होगी तब तुम लोग पुनः अपने रूप में होकर देवलोक जा सकोगी। यह कहकर सुमन्त्र ने अँगुली से चरती हुई पाँचों घोड़ियों को दिखाया ॥११—२०॥

श्रीराम जी ने सीता जी की शिविका के पास जाकर सुमन्त्र की बताई आख्यायिका बताकर कहा कि प्रिये ! तुम्हारी कृपा-दृष्टि पाते ही ये बेचारियाँ स्वर्ग चली जायेंगी। श्रीराम जी के आग्रह करने पर परम करुणामयी श्री सीता

जी ने जैसे ही कृपा-कटाक्ष से उन्हें देखा उन्होंने तुरन्त ही सुन्दरी देवांगना होकर श्री सीता जी के चरणों में प्रणाम किया और विधिवत् पूजन स्तुति करके विमानों पर बैठकर इन्द्रलोक को गईं। सूत जी ने बतलाया कि तब से वह तीर्थ-रूप हो गया। वहाँ स्नान-दान से लोग श्रापदोष से छूट सकते हैं। श्री सीता जी ने श्रीराम जी से प्रार्थना किया कि इस तड़ाग में गाय, भैंसों को पानी पीने की सुविधा भी कर दी जाती तो बहुत ही उत्तम होता। तब श्रीराम जी ने उठकर तड़ाग के बाहर जाकर अपने धनुष की कोटि (नोक) से उसके भीठे में एक छोटा सा छिद्र कर दिया जिससे तालाब का पानी बाहर निकलकर छोटी सी नदी के रूप में बहने लगा। उस नदी का नाम रामरेखा प्रसिद्ध हुआ, जिसमें स्नान, दान से पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रीराम जी ससैन्य रात भर वहीं निवास किया ।।२१—२८।। इत्युत्तरार्द्धे द्वाविंशोऽध्यायः ।।१२।।

तेइसवाँ अध्याय

दूसरे दिन प्रातः सरयू पार करके सब लोग विल्वहरि स्थान पर गये। वहाँ की ग्रामीण स्त्रियाँ अनेक प्रकार की भेंट लिए हुए श्री सीता जी का दर्शन करने पहुँची। पटवेश्म (तम्बू) में स्थित श्री सीता जी के चरण-कमलों में अञ्चल से प्रणाम करके ग्राम्य वस्तुओं की भेंट समर्पण करके अलौकिक रूपवाली श्री जी के मुखचन्द्र करपद कन्ज की रूपमाधुरी पान करती हुई महाराज दशरथ जी की पतोहू का दिव्य वस्त्राभूषण दिव्य शृङ्गार देखकर अपने आपको कृत कृत्य मानकर आपस में कहने लगीं कि ये सत्य ही अयोनिजा हैं, नहीं तो भला मनुष्य कन्या में ऐसा रूप और प्रजा वत्सल स्वभाव कहीं हो सकता है ।।१—१३।।

इसके बाद उन ग्राम्य बालाओं ने श्री जानकी जी की तीनों भगनियों एवं सखियों का भी दर्शन करके प्रणाम किया। परम शीलमती श्री सीता जी ने उनका नामगोत्र आदि जानकर उन सबको विचित्र प्रकार के भूषण वस्त्रादि देकर सत्कार पूर्वक विदा किया। वे ग्राम्य बालायें दक्षिक्षा प्रणाम करके अपने-अपने घर गईं। विल्वहरि क्षेत्र में रात्रि भर निवास करके प्रातःकाल सरयू में स्नान एवं बहुत सा दान करके प्रातराश (जलपान) किया और तब सभी समाज

के साथ नन्दिग्राम के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में अनेकों ग्राम और तीर्थ मिले उनमें बारम्बार स्नान दान करते जाते थे ॥१४—२२॥

सरयूतमसयोर्मध्ये यत्किंचिद्विद्यते जलम्
तत्तोयं जाह्नवी तुल्यं सीतां प्राह रघूत्तमः ॥२३॥

श्रीराम जी ने सीता जी से कहा कि सरयू और तमसा के बीच में जो भी जल हैं वह सब गंगा जी के तुल्य हैं। अपने पूर्वजों के स्थापित अनेक यज्ञ यूपों को देखते हुये एवं सीता जी को देखते हुये संध्या समय नन्दिग्राम में पहुँचकर पड़ाव डाल दिया। तब सभी सैनिकों ने भोजनादि से निवृत्त होकर महाराज सगर के यज्ञ स्थान परम पवित्र नन्दिग्राम में कथा कीर्तन करते हुए रात्रि जागरण किया। श्री माण्डवी जी ने भरत जी से प्रार्थना किया कि स्वामिन यहाँ पर अपने नाम से एक तालाब बनवाइये तब श्री भरत जी ने श्रीराम जी से पूँछ कर पिता जी से आज्ञा मँगवा कर महाराज दिलीप के बनाये हुये गया तीर्थ से उत्तर और नन्दिग्राम गाँव से दक्षिण विशाल एवं रमणीक गम्भीर ह्रद बनवाया। कई दिनों में जब खनकों ने खोदकर एवं राजों (मिस्त्रियों) ने चारों ओर रमणीक घाट छतरी (बुर्ज) आदि बनाकर तैयार कर दिया तब शुभ मुहूर्त में बड़ी धूम से प्रतिष्ठा किया। नाना वस्त्राभूषणों से सीताराम जी सहित ब्राह्मण, दम्पतियों, ब्रह्मचारियों (विद्यार्थियों) और विरक्त वैष्णवों की पूजा करके नाना रंग के कमल लगाकर एवं अनेक पक्षियों से शोभित उस वृहद् सरोवर का नाम भरत कुण्ड रखा गया ॥२३—३२॥

इत्युत्तरार्द्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

कई दिनों के बाद भरतकुण्ड में स्नानदान करके सब कोई रमणक वन में गये। वह वन श्री सीताराम जी का विहार स्थल है। वहाँ पहले एक रमापाद नामक महामुनि श्री सीताजी का ध्यान करते-करते जरा से जीर्ण शरीर हो गये थे। किसी समय बासन्ती नामवाली श्री सीता जी की सुन्दरी सखी वहाँ युगल सरकार के शृङ्गार करने के लिए फूल चुनने गई। उसने पांडुर केश वाले पुण्य-

कीर्ति महात्मा जी को श्री जी के पूजन ध्यान में लगे देखकर भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और महल में जाकर श्री सीता जी से बताया। तब श्री सीताराम जी अनेक दास दासी सखी सखाओं के सहित रथ पर बैठकर महामुनि के दर्शनार्थ रमणक वन पहुँचे। कुछ दूर पर रथ छोड़कर पैदल ही चले। नूपुरों की ध्वनि सुनकर महामुनि ने नेत्र खोलते ही सामने साक्षात रमा और रमानाथ को देखकर आनन्द में विभोर होकर साष्टांग पड़कर प्रणाम किया। पुनः प्रकृतिस्थ होकर श्री सीताराम जी का सहस्रोपचार से पूजन करके श्री सीता जी की स्तुति किया वह स्तोत्र दिव्यैकादशी नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१—९॥ वह स्तोत्र यह है :—

जयत्वं पद्म पत्राक्षि जयत्वं राघव प्रिये।
जगन्मातर्महालक्ष्मि संसारार्णवतारिणि ॥१०॥

महादेवि नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि।
रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे ॥११॥

पद्मालये नमस्तुभ्यं नमस्ते राघव प्रिये।
जगन्मातर्नमस्तुभ्यं कृपावतिनमोस्तुते ॥१२॥

दयावति नमस्तुभ्यं नमो विश्वेश्वरप्रिये।
नमः ज्ञानार्णवसुते नमस्त्रैलोक्य धारिणि ॥१३॥

विश्वेश्वरि नमस्तुभ्यं रक्षमां शरणागतम्।
रक्षत्वं देवदेवीश देवदेवेश बल्लभे ॥१४॥

दरिद्रात्त्राहि मां देवि कृपां कृत्या ममोपरि।
नमस्त्रैलोक्य जननि नमस्त्रैलोक्य पावनि ॥१५॥

ब्रह्मादयो नमन्तित्वां जगदानन्ददायिनीम्।
रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगद्धिते ॥१६॥

आर्तिहरे नमस्तुभ्यं समृद्धि कुरुते नमः।
अब्ज वासे नमस्तुभ्यं चपलायै नमोनमः ॥१७॥
नमस्ते शीघ्रगामिन्यै चंचलायै नमोनमः।
परिपालय मांमात दासमां शरणागतम् ॥१८॥
शरणंत्वां प्रपन्नोऽस्मि कमले कमलानने।
त्राहि त्राहि महादेवि परित्राणपरायणे ॥१९॥
किंबहूत्केन भोदेवि नमस्तेऽस्तु पुनः पुनः।
अन्यन्मे शरणं नास्ति त्वमेवशरणंमम ॥२०॥

श्री सीता जी ने प्रसन्न होकर कहा मुने ! प्रातःकाल उठकर जो कोई भी इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक नित्य पढ़ेगा या सुनेगा वह सुख सौभाग्य सम्पन्न होकर बुद्धिमान, ऋद्धिमान, पुत्रवान्, गुणवान एवं श्रेष्ठ सुखभोक्ता होकर अन्त में मेरे दिव्य साकेत को प्राप्त करेगा। इस प्रकार वरदान देकर मुनि को साकेत भेज दिया और कई दिनों तक वहाँ युगल सरकार विहार करते रहे। उसके बाद समाज सहित सरयू जी के तीर-तीर चलकर गुप्तहरि क्षेत्र पर पहुँचे ॥२१–२७॥

श्रीराम जी ने बताया कि एक बार दैत्यों का नाश करने के लिए विष्णु भगवान ने यहाँ श्री सीता जी का बहुत दिनों तक आराधन किया था तब से इसका नाम गुप्तहरि है। इसके बाद सब अयोध्यापुरी में पहुँचे। राजद्वार पर हाथी से उतरकर पिता को प्रणाम किया। राजा ने चारों पुत्रों को अंक में भरकर परमानन्द प्राप्त किया। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा आदि रानियों ने पुत्रों एवं पुत्रवधुओं को अंक में लेकर परमानन्द प्राप्त करते हुए शुभाशीर्वाद दिया। परमात्मा श्रीराम जी के इस तीर्थयात्रा प्रकरण को जो नित्य भक्तिपूर्वक कहता या सुनता है वह तीर्थयात्रा के फल को पाता है ॥२८—३६॥

॥ इत्युत्तरार्द्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

जिसको सुनकर मन अन्यत्र जा ही नहीं सकता ऐसे श्री सीताराम जी के

विहार को जब शौनक जी ने पूँछा तो सूत जी कहने लगे कि कनक भवन के दक्षिण अशोकवन में मणियों की ढेर लग जाने से मणिकूट नामक कृत्रिम लीला पर्वत है वहीं श्री सीता जी का बनवाया हुआ सुन्दर ह्लद श्री सीताकुण्ड है। उस मणि पर्वत के चारों ओर परम रमणीक वन में अपनी हजारों सखियों के सहित श्री सीता जी आनन्द से क्रीड़ती हुई अपनी ही, कीर्ति एवं शीलादि गुणों से स्वामी के मन को हरण करती हुई सभी ऋतुओं में विहरती रहीं। एक बार श्री जानकी जी ने अपने कर-कमल का बनाया पुष्पमाल श्री रामजी के कण्ठ मे पहनाते समय श्रीराम जी के वक्षःस्थल पर लंबित कौस्तुभ में अपना प्रतिबिम्ब देखकर समझा श्रीरामभद्र जी किसी अन्य सुन्दरी का चित्र गलेंं में लटकाकर अपने एकपत्नी व्रत से च्युत हो गये ॥१—८॥

आत्मानं प्रतिविंवं तु दृष्ट्वा मोहकरं परम् ॥७॥
मानं चकारसा वाला द्वितीय पत्नि शंकया।
एक पत्नी व्रतो रामो द्वितीयांतु विभर्त्यसौ ॥८॥

ऐसा मानकर अपनी सुभगा आदि हजारों सखियों के साथ अन्य कुँज में जाते ही श्री किशोरी जी मूर्छित हो गईं। सखियाँ घेर कर शोक करने और होश में लाने का उपाय करने लगीं। बड़े प्रयत्न से चैतन्यता लाभ करने पर सखियाँ श्री जी का शृङ्गार करने आईं तो श्री जी ने मना कर दिया। तब सुभगा ने हाथ जोड़कर प्राथना किया कि आप तो कभी हम लोगों की सेवा का निषेध नहीं करतीं आज क्यों रोक रहीं हैं। श्री सीता जी ने माला पहनाने चित्रदर्शन आदि की बात कहकर कहा कि मेरे पतिदेव ने दूसरी सुन्दरी का वरण कर लिया है तो भी उनकी प्राणप्रिया तो मैं ही रहूँगी अतः सापत्न्य दुःख मुझे नहीं है। दुःख का कारण तो प्राणनाथ की प्रतिज्ञा भंग हो जाना है। ॥६—२१॥

श्री जी की बात सुनकर सुभगा सखी खिल-खिलाकर हँस पडी और साकेत की पुरानी कथा (सत्योपाख्यान उत्तरार्द्ध अध्याय १) का स्मरण दिलाकर बताया कि जिस सुन्दरी को आपने स्वामी के वक्षःस्थल में देखा है वह तो मेरे शृङ्गार-

दान से बन्द है। यह कहकर श्री जी के सामने दर्पण रख दिया। दर्पण में अपना मुख देखकर श्री जी पहले तो खूब हसी पुनः अपनी गर्हणा करने लगी कि अपने अज्ञान से मैंने पति-परमेश्वर का अपमान किया इसलिए मैं स्वयं अपने को शापित करती हूँ कि मुझे कई मास तक पति-विरह जन्य पीड़ा का अनुभव करना पड़ेगा। ऐसा सुनते ही विमला नाम की सखी ने श्री राम जी से जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया। सुनते ही श्री रामजी उस कुँज में सखी के साथ-साथ गये ॥२१—३३॥ देखते ही उठकर श्री जी प्रभु चरणों में प्रणाम करके लज्जा से सिर नीचे किये कहने लगीं कि मैंने जीवों के समान आचरण कर में—

एक पत्नी व्रते राजन् भ्रान्तिस्तुमया कृता ॥३७॥

आपके एक पत्नी व्रत में भ्रान्ति किया अतः मैंने स्वयं को शापित कर लिया। इस प्रकार कहती हुई सीता जी का हाथ पकड़ कर कहा प्रिये ! तुम्हारी भ्रान्ति नहीं है अपितु तुम सदैव ही मेरे मन प्राण रोम-रोम में बसी रहती हो इसी से तुम्हारा प्रतिबिम्ब मेरे वक्षःस्थल में दिखाई पड़ता है। यह कहकर मणिपर्वत के समीप बने हुए विश्राम कुञ्ज में श्री जी एवं सखियों को साथ लिए गये और मणि चित्रित सुन्दर सिंहासन पर युगल सरकार विराजमान हुये। सखियाँ नृत्यगान आदि करने लगीं। कुछ समय बाद भोजन तदनन्तर विश्राम करने गए पुनः राजमन्दिर में पधारे। परमात्मा श्रीराम जी का ऐसा रसमय चरित्र रसिकों भावुकों को आनन्द देने वाला है। हे शौनक जी ! ऐसी गोप्य कथा सबको न सुनाकर केवल श्रद्धावान् श्रीराम भक्तों से ही कहनी चाहिये। ॥३४—५१। इत्युरार्द्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

किसी दिन पुनः श्री सीताराम जी मणिकूट पर गये, उसके नीचे हिलोदकी नामवाली पतली धार वाली छोटी नदी प्रवाहित हैं उत्तर में। पूर्व में विद्यापीठ नामक सुन्दर उत्तम सिद्धपीठ है और दक्षिण में गणेश कुँड नामक सुन्दर सरोवर हैं जिसमें से कभी-कभी शेष जी प्रगट होकर दिव्य दम्पति का दर्शन कर जाते हैं इसी से मणिपर्वत को शेषाचल भी कहा जाता है। उस कृत्रिम पर्वत के चारों ओर नाना प्रकार के मनोहर वृक्ष लतायें एवं कुंजें हैं। कोकिल, मोर, चकोर

आदि सब ऋतु के पक्षी सदैव कूजते विहरते रहते हैं। वर्षा ऋतु में तो श्री सीताराम जी कनक भवन जाते ही नहीं, हिंडोल उत्सव नित्य मणिकूट पर ही मनाते रहते हैं। सान्द्र मेघवत् श्याम श्रीरामचन्द्र जी एवं विद्युल्लतावत् श्री सीता जी को हिंडोल पर झुलाती हुई सखियाँ हिंडोल एवं मलारराग गाती हुई एवं नाचती बजाती हुई परमानन्द लाभ लिया करती हैं। ।१—१२।।

हिंडोले पर ही श्री सीताजी रामजी को अपने हाथ से पान खिलाती है श्रीराम जी सीताजी को अपने हाथ से पान खिलाते हैं। कभी युगल सरकार एवं सखा सखी सब एक ही रंग के वस्त्र हरित, लाल, श्वेत, आदि धारण करके झूलते हैं। कभी जोर से झूला चलने पर सीता जी भयभीत होकर रामजी के अंक में चिपट कर झूला धीमे करने का आग्रह करती हैं। कभी झूलते झुलाते जब शरीर में पसीना आ जाता है तो श्री रामजी की इच्छा से ही मन्द-मन्द वृष्टि (फुहारें) पड़ने एवं शीतल पवन चलने लगता है। कभी जानबूझ कर वर्षा में भीग जाते हैं तो किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर दोनों अपने-अपने वस्त्र निचोड़ने लगते हैं। दोनों एक दूसरे को अपने वस्त्रों में ढांकने की चेष्टा करने लगते हैं ।।१३—२ ।।

कभी अपने वस्त्र निचोड़ कर उससे एक दूसरे के मुख एवं शिर को पोंछने लगते हैं। कभी एक दूसरे के कर्ण भूषण एवं शिरोभूषण आदि को ठीक करते हैं। दिव्य दम्पति के एवं विधि अनेक विहार विनोद को देख-देखकर सखियाँ आनन्दानुभव करती हैं। इस तरह प्रति वर्ष आधे आषाढ़ मास से आधे आश्विन मास तक श्री सीताराम जी अशोक बनस्थ मणिकूट पर विहरते रहते हैं। आश्विन की अमावस्या को जब महाराज दशरथ जी पितृ–विसर्जन करके नवरात्रोत्सव का आरम्भ करते हैं तो शस्त्रास्त्र पूजन के लिये कुमारों को महल में बुलवा लेते हैं। इस प्रकार श्री सीताराम जी के दिव्य विहार की कथायें प्रेमियों के अतिरिक्त अन्य से न कहनी चाहिये। ।।२८—३९।।

।। इत्युत्तरार्द्धे षड्विंशोऽध्यायः २६ ।।

सत्ताइसवाँ अध्याय

एक बार कार्तिक अमावस्या को दीपमाला के आलोक में श्री सीता और

द्यूत क्रीड़ा का नियम पालन कर रहे थे (दीवाली की निशीथअर्द्धरात्रि पति पत्नी को एक घंटा द्यूत क्रीड़ा करनी चाहिये। यह शास्त्रीय नियम हैं।) हार जाने पर श्रीरामजी ने कहा देवि ! मैं हार गया अब क्या करूँ क्या दूँ ? श्री जी ने कहा आपका शरीर मन सबकुछ मिल चुका है मुझे पहले ही से अतः अब आपके पास है ही क्या जो देंगे ? हाँ करने के लिये वह है कि "ऋते ज्ञानान्नमुक्ति" का जो बन्धन आपने रखा है, वह भक्तों पर से हटा लीजिये अर्थात् जो भक्त वेद वेदान्त नहीं पढ़े अष्टांग योग साधन द्वारा भी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते केवल हमारा आपका नाम सीताराम सीताराम रटते हुए सर्वतो भावेन शरणागत हैं उनके लिये दिव्य साकेत का द्वार सदा खुला रखिये वे अव्याहत रूप से वहाँ जाया करें। एवमस्तु कहकर श्री राम जी ने पुनः द्यूतारम्भ किया। अबकी बार श्री जानकी जी हार गईं तो कहने लगी ।१—६ ॥

दास्यहं ते सदा स्वामिन् सेवकी ते पदाब्जयोः ।
आज्ञाकरी सदाराजन् विधेयां ममवेहि च ॥१०॥

स्वामिन्। मैं तो आपके चरण कमल की दासी हूँ मैं तो आपकी आज्ञा पालन करने वाली हूँ मुझे क्या आज्ञा होती है। श्रीरामजी ने हृदय से लगाते हुए कहा देवि ! तुम तो मेरे हृदय की अधीश्वरी हो। दूसरे दिन (कार्तिक शु० १ को) प्रातः गुप्त हरि पर स्नान करने गये और वहीं कल्पवास करने के लिये सरयू जी के किनारे तम्बू डालने की आज्ञा दी। अब तो सभी विशिष्ठ त्रिशिष्ठ अयोध्या वासियों ने वहीं डेरा डाल दिया। सब लोग दैनिक कृत्य करके श्रीराम जी का दर्शन करना ही समस्त तीर्थ यात्रा का फल मानते हैं।

कार्तिक तीर्थ राजोऽपि स्नातु याति नित्यशः ।१३॥

कार्तिक में तो प्रतिवर्ष अयोध्या में आकर स्वयं तीर्थराज प्रयाग सरयू स्नान करते हैं और हरि का दर्शन करते हैं कार्तिक शुक्ल पक्ष में एक दिन भी अयोध्या में सरयू स्नान करने से समस्त तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त हो जाता है। पूर्णमासी को स्नान दान पूर्वक कल्पवास पूरा करके स्वर्ग द्वार नामक घाट पर आकर

सभी ने स्नान किया, सपत्नीं ब्राह्मणों को भोजन कराया, दक्षिणा ॰ ॰ो श्री तब ब्राह्मणों को मुहमांगी वस्तुयें देकर श्रीराम जी ने कहा—११—२२ ।। ॰र ही श्री

आप लोग नारायण स्वरूप हैं। आप लोगों के पुजने से रमानाथ प्रसन्न हो हैं। जो लोग नित्य ब्राह्मणों का पूजन सत्कार करते हैं वे इस लोक में सुख भोग कर परंधाम को प्राप्त करते हैं। श्रीराम जी की यह विप्र वत्सलता देखकर ब्राह्मणों ने कहा प्रभो! आप तो साक्षात महानारायण हैं और सीता देवी स्वयं महालक्ष्मी हैं समस्त लोक के कल्याणार्थं आपने अवतार लिया है। आपकी कीर्ति त्रैलोक्य पावनी है इसे गाकर सुनकर लोग परमपद प्राप्त करते रहेंगे। ब्राह्मणों को विदा करके अन्य याचकों को सन्तुष्ट करके श्री सीताराम जी अपनी-अपनी पालकी पर बैटकर राजमहल गये। ।।२३—२६ ।।

इत्युत्तरार्द्धे सप्त विशोऽध्यायः ।।२७।।-

अट्ठाइसवाँ अध्याय

फाल्गुन मास में सखियों की प्रेरणा से श्री सीताजी के प्रेमाग्रह पर श्री रामजीने होलिकोत्सव मनाने की आज्ञा दिया। तब तो सखियाँ अनेक हाद-भाव हास-विलास पूर्वक नृत्य गान करने लगीं। एक दूसरे पर अबीर गुलाल मुट्ठी भर-भर फेकती हैं, लाल रंग को पानी में घोलकर उसमें खूब अतर मिलाकर पिचकारी से परस्पर छोड़ती हैं। रामजी ने पिचकारी से मैथिलीय सखियों को भगा दिया। श्री सीता जी ने स्वर्ण निर्मित पिचकारी से रामजी को सींच दिया और रामजी का हाथ पकड़कर ले जाकर रंग के कुण्ड में वस्त्र सहित स्नान करा दिया। रामजी ने भी सीताजी को पकड़ कर उसी रंग के कुण्ड (हौज) में डुबा दिया। रंग कुण्ड से निकलने पर रामजी का कंचुक उष्णीष (कुरता पगड़ी) उत्तरीय (चद्दर पटुका) सब लाल हो गया। रंग के हौज से निकल कर रामजी वस्त्र निचोड़ने लगे ।।१—१०।।

उसी समय रंग में भीगी सखियाँ रामजी के नेत्रों में काजल लगाने की इच्छा से आ गईं। रामजी ने सोचा मेरा निरंजन क्यों सांजन होकर मिथ्या हो। यही कज्जल यदि मन्थरा मौसी के मुख में लग जाय तो थोड़ा हास्य विनोद

अधिक मनोरंजक हो जाय। अतः श्रीरामजी हँसते हुये भागे। श्री जी ने नेत्र के इशारे से सखियों को साथ आने को कहकर श्रीराम जी के पीछे दौड़ीं। श्री रामजी मझली माता कैकेयी के घर में भगे, कैकेयी जी ने एक मकान में रामजी को छिपा दिया। सखियों के सहित सीता जी पहुँच कर खोजने लगीं तो मन्थरा ने बता दिया कि बड़े राजकुमार उस अमुक घर में छिपे हैं। तब तो कैकेयी जी ने रुष्ट होकर मन्थरा को डाँटकर सीता जी से कहा बेटी! इस बँदरमुही कुबरी को ही नाना रंग में रंगकर विदूषिका (जोकरी) बना डालो। ॥११—२०॥

यह सुनते ही सखियो ने मन्थरा के कपोल ललाट सर्वत्र कज्जल आदि लगा-कर उसके हाथ दर्पण दे दिया, वह अपना मुख कई रंगों में रंगा देखकर लज्जित होकर भागी और एक घर में जाकर भीतर से कपाट बन्द कर लिया। इसी बीच में राजकुमार रामजी वहाँ से निकल कर बड़ी अम्बा कौशल्या जी के घर भागे। वस्त्रों से रंग टपक रहा था। माता को पर्यंक पर बैठी देखकर तीन वष के बालक सरीखे हंसते-हँसते गोद में गिर पड़े। तभी पिचकारी लिये हुये सखियों सहित श्री जी पहुँच गईं परन्तु सास को देखकर सिर नीचा करके खड़ी हो गईं और सखियों को रोककर अपने हाथ की पिचकारी सुभगा सखी के हाथ मे देकर बोलीं ॥२१—२६॥

माता जी! आपके पुत्र ने मुझे रंग में भिगा दिया। अब भागकर आपकी गोद में साधु बन कर बैठे हैं। पिचकारी मार-मारकर मेरा एवं मेरी सखियों का सारा वस्त्र खराब कर दिया है। कौशल्या जी सीताजी को गोद में लेकर कहने लगीं कि बेटी! ऐसी उपालम्भ की बात मेरे सामने नहीं कहनी चाहिये। देखो तो तुम्हारे डर से मेरा बच्चा यहाँ आकर छिप गया है। यह फाल्गुन मास तो खेलने का दिन ही है। अच्छा इसके दण्ड में मेरे पुत्र से भेंट पुजा ले लो। ऐसा कहकर श्री जी को एवं सखियों को बहुत सा बहुमूल्य भूषण वस्त्र दिया और बेटा बहू को बिदा किया। ॥१०—३६॥ तब श्री जी अपने महल में जाकर रामजी का हाथ पकड़कर कहने लगीं कि अब कहिये यहाँ आपकी कौन गति की जाय? रामजी हंसने लगे। इसी प्रकार अनेक दिन भिन्न तरह का होलिका क्रीडन होता,

रहा ॥३७—४१॥ इत्युत्तरार्द्धेष्टविंशोऽध्यायः । २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

एक बार जेष्ठ शुक्ल दशमी को रात्रि में नौका पर सरयू में भ्रमण (जल-विहार) की इच्छा से सखियों सहित सीता जी को पालकी पर बैठाकर सरयूतीर पर भेजवाया और स्वयं हाथी पर चढ़कर सरयू तट पहुँचे। सरयू के दोनों किनारे पर राजद्वीप पुष्पवाटिका के रूप में सजाये हुए पुष्पकलश (गमले) दूर-दूर तक बहुत लम्बी चौड़ी वाटिका की छटा दिखा रहे थे। स्फटिक (संगममंर) के बने घाट, सीढ़ियाँ, चबूतरे सरयू तट पर अपूर्व छठा दिखा रहे थे। कनक महल से पूर्व सरयू तट (रामघाट) पर जाकर राजकुमार का समस्त समाज उपस्थित हुआ।१-१४॥ शिविका से उतर कर सखियों सहित सीता जी जब जल के पास चलीं तो उन सबके नूपुरों का शब्द सुनकर घाट पर विचरने वालों हंसों के बोलने का भ्रम हो गया सरयू का वह घाट दूर-दूर तक संशोधित था अर्थात् आस-पास वही घातक जल जन्तु तिमि नक्र (सूँस, घड़ियाल) मगर आदि नहीं थे। श्री रामजी की आज्ञा से सुन्दर राज सज्जा से सुसज्जित रमणीक एवं मजबूत पोत (बजड़ा) मल्लाहों ने सनकी रस्सी से खीच कर किनारे लगाया। पोत पर सवार होकर श्रीरामजी ने सीताजी को अपने पास बैठाया और कहने लगे कि—हे सीते ! यह वही सरयू नदी है जिसमें तुम्हारी सखियाँ नहाते समय अपने अंगराग और अजन से श्वेत जल को रंगीन एवं सुगन्धमय बना दिया करती हैं। उनके नेत्र एवं मुख विकसित कमलवत मालूम होते होंगे। जैसे अपने गुरुतर अंग विशेषों के कारण तुम तैर नहीं सकतीं ऐसे ही तुम्हारी सखियाँ तो बिशाल वक्षःस्थल एवं श्रोणिद देश के कारण तैर न सकती होंगी। इसी तरह सखियों के व्याज से श्री सीताजी के सर्वाङ्ग के सौंदर्य माधुरी को आलंकारिक भाषा में श्रीराम जी ने वर्णन किया कि सीता जी भी नौका से उतरकर पति के साथ सरयू में स्नान बिहार की इच्छा प्रगट करने लगीं।१५—३२।

तब श्रीराम जी सीता जी का हाथ पकड़ कर जल में उतरे और जैसे मत्त वन्य गजेन्द्र अपनी प्रिय हथिनी के साथ महानद ब्रह्मपुत्र में क्रीड़ा करता है ऐसे ही सीता जी के साथ जल-बिहार करने लगे। कभी सीता जी का हाथ पकड़ कर

गोता लगा देते हैं कभी एक दूसरे पर जल के छींटे फेंकते हैं। जब बहुत देर तक जल क्रीड़ा करते-करते थक गईं तो आर्द्र वस्त्रों सहित सरयू जी से बाहर निकलते हुये सीता जी ऐसी जान पड़ने लगीं मानों समुद्र मन्थन से लक्ष्मी निकल रहीं हों। पर वेश्म (तम्बू) में जाकर श्रीराम और सीता ने अपने-अपने वस्त्रों को धारण किया और पुनः जलपोत (बजड़े) पर चढ़कर देर तक सरयू भ्रमण किया। तत्पश्चात् हरिवासी विप्रों एवं गंगापुत्रों (पंडों) को खूब दानादि देकर पालकियों पर बैठकर कनक भवन गये ।।३३—४२।।

।। इत्युत्तरार्द्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

तीसवाँ अध्याय

इस प्रकार रमानाथ श्रीराम जी माता-पिता, भाई, मित्र, दास, पुरजन परिजन सबको आनन्द देते हुए विहरते रहते थे। नाना रत्न खचित ऊँची-ऊंची अट्टालिका महलों वाला साकेत नगर—जो कि वेदों मे सत्या, विमला, आद्यापुरी, अयोध्या आदि नामों से ख्यात है उसमें रत्न मण्डप युक्त राजमहल की शोभा ब्रह्माण्ड भर से निराली है। महल में जटित रत्नों की प्रभा अग्नि और सूर्य के समान हैं। राजदुर्ग के चारों ओर सोने की दीवाल है उनके बाद ताँबे की और उसके बाद पीतल की दीवार है। दुर्ग के भीतर सोने, चाँदी, पीतल, ताँबे के अनेक मकान एवं मकानों के शिखर हैं। नील स्फटिक वैदूर्य (लालमूँगा) मुक्ता एवं मरकत (संगमूसा) शुद्ध स्फटिक संगमरमर आदि के फाटक तथा चोखट बाजू बने हैं, जिन महलों की रचना स्वयं विश्वकर्मा ने की है ।।१—८।।

सर्वसुर बन्दिता श्री सरयू के किनारे (बस्ती से बाहर) अनन्त सुन्दर, अश्वशाला, गजशाला, उष्ट्रशाला एवं रथशालायें बनी हैं। उन्हीं के पास उनके (हाथी घोड़ों के) सेवकों के लिए भी सुन्दर घर बने हैं। बड़े-बड़े सुन्दर एवं सुदृढ़ फाटकों से युक्त बड़ी-बड़ी सड़कें चिकने पत्थरों से बनी हैं। अनेक चौराहे राज सैनिकों से सुरक्षित शोभा पा रहे हैं। अनेक पुष्करिणी (सुन्दर छोटे-छोटे तालाब) जो गहरे हैं एवं जिनके चारों ओर सुन्दर घाट बने हैं। उन पुष्करणियों में अनेक रङ्ग के कमल पुष्कर कल्हार, एवं कुमुदिनी कुमुद आदि शोभित हैं।

जगह-जगह विष्णु मन्दिर बने हैं जिनमें समय-समय पर वीणा, वेणु, मृदंग, मर्दल आदि बजते रहने एवं नृत्य, गान, कथा, कीर्तन होते रहते हैं। बागों में शाल, ताल, नारियल, पनस (कटहल), आँवला, इमली, आम, कपित्थ एवं बिल्व आदि वृक्ष शोभित हैं जिनमें कितने तो बारहोमास फल से युक्त रहते हैं। पुष्प वाटिकाओं में मालती, जाती, जपा, बकुल (मौलश्री), पाटल (गुलाब) पुन्नाग, चम्पा, करवीर, कर्णिकार, केतकी, आदि अनेक पुष्पों के क्षुप, गुल्म, लतायें, वृक्षादि सुशोभित हैं। संकीर्ण वाटिकाओं में यत्र-तत्र निम्बू (कागज), जबीर, महाफल (चकोतरा), कदली, मातुलुङ्गी, (नारंगी), त्रिधारी (कमरख), अगरू, रक्तचन्दन, कचनार आदि ढंग से लगे हैं ॥९—१५॥

सूत जी ने कहा कि महर्षियों! उस अनादि पुरी का वर्णन कोई कहाँ तक कर सकता है यही समझ लीजिए कि—त्रैलोक्य की विभूति और शक्ति को पराजित करके अयोध्या ने अपने अपराजिता नाम को चरितार्थ कर दिया है। वसुन्धरा ने भी अपनी प्रिय सुता के विहार के लिए रत्नमयी होकर अपना रत्नगर्भा नाम सिद्ध किया है। चक्रवर्ती अयोध्यापति की राजधानी रघुवंशियों के राजश्री की लीला भूमि सी बनी है। उनकी धवलकीर्ति मानो पुण्य सलिला सरयू के रूप में बह रही है। हेम रत्न खचित अट्टालिकायें सुमेरु के शिखर-सी सुशोभित हैं। सूर्यवंश की निकेतन होने से प्रभा उन्हें प्यार से चूम रही हैं। वहाँ उद्यानों का माली स्वयं वसन्त ऋतु है। सदा हरे-भरे फूले-फले वृक्षों पर पक्षिकुल मूर्तिमान स्वरों की तरह कलरव करते हैं। उद्यानों के मानस के समान स्वच्छ सरोवरों में मानों विविध भाव कमलों के रूप में खिले हैं। जिनपर सद्विचार हंस बनकर विहार कर रहे हैं। सब पौरजन सुन्दर, स्वस्थ, सुशील, रसिक, उत्साही और विद्वान् हैं। उन्हें देखकर तप एवं सत्यलोक के निवासी तक मुग्ध हो जाते हैं। चारों वर्ण अपनी-अपनी मर्यादा में रहकर वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं। सबका श्रीराम भद्र में अटूट प्रेम है—

सबही के सुन्दर मन्दिराजिर राउ रंक न लखि परै।
नाकेश दुर्लभ भोग करहिं न मन विषयनि हरै॥

(गीतावली)

रामजी वास्तव में अवध भारत वसुन्धरा का हृदय है, वह इस समय ब्रह्माण्ड के में अखण्ड प्रताप प्रभाकर का मध्याह्नकाल है। यहाँ अनेक दास-दासी, सखा-सखी आदि से सेवित राजकुमार रूप में परब्रह्म श्री रामजी सीता सहित नित्य विहार करते हैं और—

पूरयन्तं सदाकामान् सेवकानां मुहुर्मुहुः ॥२४॥

दासों की समस्त कामनाओं को सदा पूर्ण करते रहते हैं। इस प्रकार अव्यय सीतापति श्री राम को चिन्तवन करता रहे। जिस सत्यानन्द चिदात्मा में योगी नित्य रमण करते हैं वही परब्रह्म रामजी ही माता-पिता, भ्राता, सुहृद स्वामी सब कुछ हैं ॥१६—२४॥ यह श्री सीताराम जी का शुभ चरित्र मैंने गुरुदेव श्री व्यास जी से सुना था। चरित्र यश, आयु, पुण्य, वंशादिका बढ़ाने वाला है। सदैव सुनने वालों को चारों फल हस्तगत हो जाते हैं। इसके सुनने और सुनाने वाले दोनों परमानन्द प्राप्त करते हैं। सुनाने वाले की यथाशक्ति प्रेम-पूर्वक पूजा करके दक्षिणा देनी चाहिए।

मंगलानि प्रजाभ्यस्तु नृपेभ्यस्तु सदैव हि
साधुगो बिप्र भूमिभ्यः श्री शोदिशतु मंगलम् ॥३०॥

भगवान श्री सीतानाथ जी राजा, प्रजा, साधु, ब्राह्मण, गाय, पृथ्वी सदैव सबका मंगल करें ॥२७—३०॥ इत्युत्तरार्द्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

लेखक की प्रकाशित रचनायें

रचना	मूल्य
१—मानस परायन पुजन पद्धति	अप्राप्य
२—प्रलापौषधि	”
३—सार्थं राम तारक प्रयोग विधि	”
४—मानस सिद्धान्त	”
५—जानकी चरण चामर सरला	”
६—धर्म रथ	”
७—जानकी चरण चामर रजःप्रच्छालिनी	”
८—वेदों में राम कथा	”
९—सत्योपाख्यान् अनुवाद	५) रु०
१०—वेदों में कृष्ण कथा	अप्राप्य
११—मंगल पचीशी	”
१२—सम्वाद बत्तीसी	”
१३—प्रेममयी मुद्रिका	४) रु०
१४—दो विभूतियाँ	अप्राप्य
१५—मानस शंका समाधान (बालकाण्ड)	४) रु०
१६—मनोहर चार	४) रु०
१७—मानस शंका समाधान (अयोध्याकाण्ड)	४) रु०
१८—भक्ति का श्रृङ्गार	२·५०
१९—जयी जटायू	३) रु०
२०—मानस में पुष्प वृष्टि	३) रु०
२१—भागवत् में राम परत्व	३) रु०
२२—पहुनाई	३) रु०
२३—वर की खोज	३) रु०
२४—मानस में नारी दीक्षा और नारी निन्दा	७५ पै०
२५—राम चरित के तीन क्षेपक	२) रु०
२६—मानस में दो दान	७५ पै०
२७—सीता गुण गान	[illegible]) रु०
२८—श्री राम स्वभाव	५० पै०
२९—राम रण क्रीड़ा	२) रु०
३०—तुलसी कृति का पाठ कैसा हो	५० पै०
३१—मानस के सपेरे	२) रु०
३२—मानस चतुष्शती कुशमाञ्जली	२५ पै०
३३—सखी गीता	१) रु०
३४—जननी शतक	१) रु०

मुद्रक—माधो प्रिंटिंग वर्क्स, प्रयाग